(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मू० २)   एक अंक ≡)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य,   सहा० सम्पा०—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ७ } मथुरा, १ नवम्बर सन् १९४६ ई० { अंक १

भलाई करना ही सबसे बड़ी बुद्धिमानी है।

दुष्ट लोग उस मूर्खता से नहीं डरते, जिसे पाप कहते हैं। मगर विवेकवान सदा उस बेवकूफी से दूर रहते हैं। बुराई से बुराई ही पैदा होती है, इसलिए बुराई को अग्नि से भी भयंकर समझ कर उससे डरना और दूर रहना चाहिए। जिस तरह छाया मनुष्य को कभी नहीं छोड़ती वरन् जहां जहां वह जाता है उसके पीछे पीछे लगी रहती है। उसी तरह पाप कर्म भी पापी का पीछा करते हैं और अन्त में उसका सर्वनाश कर डालते हैं। इसलिए सावधान रहिए और बुराई से सदा डरते रहिए।

जो काम बुरे हैं उन्हें मत करो। क्योंकि बुरे काम करने वालों को अन्तरात्मा के शाप की अग्नि में हर घड़ी झुलसना पड़ता है। वस्तुओं को प्रचुर परिमाण में एकत्रित करने की कामना से इन्द्रिय भोगों की लिप्सा से और अहंकार को तृप्त करने की इच्छा से लोग कुमार्ग में प्रवेश करते हैं। पर यह तीनों ही बातें तुच्छ हैं; इनसे क्षणिक तुष्टि होती है पर बदले में अपार दुख भोगना पड़ता है। खांड मिले हुए विष को लोभ वश खाने वाला बुद्धिमान नहीं कहा जाता, इसी प्रकार जो तुच्छ लाभ के लिए अपार दुख अपने ऊपर लेता है उसे भी समझदार नहीं कह सकते।

इस दुनियां में सबसे बड़ा बुद्धिमान, विद्वान, चतुर और समझदार वह है जो अपने को कुविचार और कुकर्मों से बचाकर सत्य को अपनाता है, सत्मार्ग पर चलता है और सत विचारों को ग्रहण करता है। यही बुद्धि मानी अन्त में लाभदायक ठहरती है और दुष्टता करने वाले अपनी बेवकूफी से होने वाली हानि के कारण शिर धुन धुन कर पछताते हैं।

अगले वर्ष के प्रथम तीन अंक बड़े अद्भुत एवं आश्चर्य मय होंगे

उनमें सैकड़ों प्रकार के सच्चे, झूठे, चमत्कारों कासुविस्तृत रहस्योदघटन किया जायगा।

अखंड ज्योति कार्यालय में विगत छै वर्षों में कई हजार पत्र इस आशय के आचुके होंगे कि वे "योग के चमत्कारों" को सीखना चाहते हैं, मथुरा कार्यालय में पधारने वाले सज्जनों में से भी सैकड़ों ने यही प्रस्ताव हमारे सामने रखे। पर अब तक हम इन पत्रों और प्रस्तावों को अस्वीकृत ही करते रहे। कारण यह था कि पिछले बीस वर्ष में इसी संबंध में हमने सुदूर प्रदेशों की यात्राऐं की हैं। प्रचुर धन और समय लगाया है, इतना सब करने के बाद जो कुछ प्राप्त हुआ है वह ऐसा है जिसे न कहते बनता है और न गुप्त रखते।

हमें ऐसे अनेकों तथाकथित सिद्धों के साथ रहने का अवसर मिला है जो देवता की तरह पुजते थे और धन की जिन पर वर्षा होती थी। उनके पास एक से एक बढ़ कर योग विद्या के चमत्कार लोगों को दिखाई देते थे। हमने भी उन्हें देखा और सीखा, ऐसे कितने ही जादूगरों से हमारे निकट सम्पर्क रहे हैं जो हैरत में डाल देने वाले जादू के खेल दिखाकर लोगों को आश्चर्य चकित कर देते हैं और इसी कला से प्रचुर धन कमाते हैं। ऐसे सैकड़ों ही खेल हमने सीखें हैं। जिन्हें हमारा निकट वर्ती परिचय है वे जानते हैं कि अखंड-ज्योति संपादक ने चमत्कारों की गहरी जानकारी प्राप्त की है। इसी लिए वे पूछते भी थे। पर उत्तर देते समय, हमारी स्थिति सांप छछूंदर जैसी हो जाती थी। कारण यह है कि—वे सभी बातें बनावटी, नकली और जालसाजी से भरी हुई हैं। जो सिद्ध, योग के नाम पर बड़ी बड़ी सिद्धियां दिखाते हैं वे, तथा जो जादूगरी विद्या की कलाऐं हैं वे, सभी असत्य और चालबाजी पर अवलम्बित हैं। उनके रहस्य बताते समय हमें यह भय रहता था कि—कहीं यह व्यक्ति इन रहस्यों के आधार पर स्वयं कोई प्रपंच खड़ा कर जनता को भ्रम में डालने और लूटने का कार्य आरम्भ न करदे। हमें ऐसे चमत्कारी करतब मालूम हैं जिनमें से एक दो को ही पकड़ लेने पर कोई आदमी देवता की तरह पुज सकता है और चांदी के महल खड़े कर सकता है। जनता को ठगा जाना और उसे भ्रम में डाला जाना एक बहुत बड़ा अनर्थ है, इस कार्य में हम किसी भी प्रकार निमित्त बनें तो यह हमारे हक में बहुत ही बुरा था। इस लिए हम किसी को भी उन बातों को बताने को तैयार न होते थे।

अभी थोड़े ही दिन हुए अजमेर के हमारे एक स्वजन श्री सत्यदेव राव, हमारे यहां पधारे। उनसे इस विषय में दो रोज तक लम्बी बातचीत हुई। गंभीर विचार विनिमय के बाद यह निष्कर्ष निकला कि जो धूर्त लोग आजकल इन हथकंडों से अपना व्यापार चलाते हैं उनका मार्ग रोकने के लिए इन रहस्यों को सार्वजनिक रूप से प्रकट कर दिया जाय। जब यह बातें सर्व साधारण को मालूम हो जायंगी तो ठगी का द्वार बन्द होजायगा, एक दो व्यक्तियों को जिन बातों के बताने में खतरा है वह सार्वजनिक रूप से प्रकट कर देने पर न रहेगा। इस निष्कर्ष के अनुसार सन् ४७ का विशेषाङ्क हम चमत्कार अंक निकाल रहे हैं। चमत्कारों के प्रश्न को इस अंक में भली प्रकार हल कर दिया जायगा।

कागज का कठोर कन्ट्रोल अब भी लगू है। लम्बी लिखा पढ़ी के बावजूद पृष्ठ बढाने के लिए कागज नहीं मिला है। ऐसी स्थिति में जनवरी फरवरी और मार्च के तीन अंकों में गत वर्ष की भांति इस विशेषाङ्क को पूरा किया जायगा। जनवरी के अंक में वास्तविक योग की वास्तविक सिद्धियां, सच्चे चमत्कार जिन्हें हम सच्चा जीवन व्यतीत करने पर बड़ी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं बताये जायेंगे। जीवन को सुख शान्तिमय, उन्नत, एवं सम्पन्न बनाने के लिए जो सिद्धियां आवश्यक हैं और जिन्हें प्राप्त करना हर पाठक का कर्तव्य है जनवरी के अंक रहेंगी। फरवरी के अंक में योगी और महात्मा कहलाने वाले कुछ लोगों द्वारा जो नकली सिद्धियां दिखाई जाती हैं और जिनसे पूजा, मान और धन लूटा जाता है उनका भंडाफोड किया जायगा। उनकी सारी चालाकियां खोल कर रखदी जांयगी। मार्च के अंक में जादू के पचासों खेलों का रहस्य प्रकट कर दिया जायगा।

१ नवम्बर सन् १९४६ ई०

शक्ति संचय के पथ पर-

अनेक प्रकार की कठिनाइयों विपत्तियों तथा तथा संकटों का प्रधान कारण निर्बलता है। निर्बल के ऊपर रोग, नुकसान, अपमान आक्रमण आदि के पहाड़ आये दिन टूटते रहते हैं निर्बलता में एक ऐसा आकर्षण है जिससे विपत्तियां अपने आप आकर्षित हो जाती है। जिसका कुछ नहीं बिगाड़ा है वह भी निर्बल का शत्रु बन जाता है। बकरी की निर्बलता उसके प्राणों की घातक सिद्ध होती है। जंगली जानवर, मनुष्य यहां तक कि देवी देवता भी उसीके रक्त के प्यासे रहते हैं। बदला लेने की शक्ति रखने वाले और आसानी से हाथ न आने वाले सिंह व्याघ्र, भेड़िया आदि का मांस लेने की किसी की इच्छा नहीं होती। देवी देवता भी इनकी ओर आंख उठाकर नहीं देखते।

हिन्दू जाति बहुत समय से बकरी बनी हुई है। उस पर भीतर और बाहर से लगातार आक्रमण होते रहते हैं। पिछली शताब्दियों की ओर दृष्टिपात करते हैं तो प्रतीत होता है कि उसे बहुत समय से आक्रमणों का शिकार होना पड़ रहा है। यूनानियों ने हिन्दुस्तान पर हमला किया, सिकन्दर ने चढाई करके काफी धन जन की हानि पहुँचाई। इसके बाद मुसलमानों के हमले शुरू हुए, एक के बाद एक हमला हुआ। नये नये वंश आते रहे और मन चाही लूट खसोट करते रहे। धर्म विस्तार के लिए उन्होंने जो ज्यादतियां कीं, हिन्दू अबलाओं जिस प्रकार इज्जत लूटी वह किसी से छिपा नहीं है। इसके बाद अंग्रेज, फ्रांसीसी पोर्तगीज आदि के आक्रमण हुए उन्होंने भी अपने अपने ढंग से हुकूमत चलाई और हुकूमत से मिलने वाले लाभों को खूब लूटा।

इतने बड़े देश पर, इतनी बहु संख्यक जाति पर थोड़े से लोगों ने इस प्रकार आक्रमण किये और ऐसी लूट खसोट मचाई इसे देखकर हैरत होती है। बड़ी संख्या को देखकर छोटी संख्या वाले खुद डर जाते हैं और दुर्व्यवहार करने का दुस्साहस नहीं करते, पर यहां तो बिलकुल उलटा हुआ। मुट्ठी मुट्ठी भर हमलावरों को तनिक से प्रयत्न में सफलता मिल गई। और वे काफी लंबे समय तक निधड़क होकर कब्जा किये बैठे रहें, यह सचमुच ही एक आश्चर्य की बात है।

आज साम्प्रदायिक दंगों का वातावरण गरम है। जगह जगह से सम्प्रदायिक दंगों को दिल दहला देने वाले समाचार प्राप्त होते रहते हैं। जिनसे प्रतीत होता है कि थोड़े से गुण्डे उबल पड़ते हैं और हजारों नर नारियों को गाजर मूली की तरह काट कर रख देते हैं। अपार धन जन की हानि कर देना उनके बायें हाथ का खेल है। हम अनाथ बालकों की तरह रोते चिल्लाते और इधर उधर भागते हैं अखबारों में लेख छापते हैं, प्रस्ताव पास करते हैं, और अन्त में माथा पीट कर चुप हो बैठते हैं। गुण्डों को हौसला बढते हैं, वे एक के बाद दूसरा आक्रमण अधिक जोर से करते हैं और अधिक उत्पात मचाते हैं। हर उत्पात के साथ उनकी पशु-वृत्ति तृप्त होती है और लूट का माल हाथ लगता है। इस घटनाक्रम की बार बार पुनरावृत्ति होती रहती है।

इस दुखद स्थिति पर गंभीरता पूर्वक विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि हम या तो अशक्त होगये हैं या हमने अपने को इस रूप में रखा है

कि दूसरों द्वारा अशक्त समझे जाने लगे हैं। जरूरत से ज्यादा जो सीधे होते हैं वे बकरी की भांति सताये जाते हैं। इसी कारण हिन्दू जाति को अनेकों प्रकार के संकटों का आये दिन सामना करना पड़ता है।

हिन्दू धर्म, दया, शान्ति, क्षमा और सहिष्णुता का धर्म है। हमारी धार्मिक शिक्षाऐं शान्ति का उपदेश देती हैं। यह शिक्षा हैं बहुत ही उच्च एवं महान हैं। यह जितनी उच्च हैं, उतने ही उच्च-कोटि के व्यक्तियों द्वारा प्रयोग में लाये जाने योग्य हैं। जिस समय आर्य जाति सब प्रकार उन्नत अवस्था में थी चक्रवर्ती साम्राज्य उसके हाथ में था उस समय वह इन शिक्षाओं को चरितार्थ करने की स्थिति में थी, जिसमें बल है, जो दंड देने की योग्यता से सम्पन्न है उसी वीर को क्षमा शोभा देती है। पैर में चींटी काटले तो मनुष्य चाहे तो उसे क्षणभर में मसल कर रखदे सकता है. ऐसी स्थिति में यदि वह उस चींटी के प्रति क्रोध न लावे और दया पूर्वक उसे क्षमा करदे तो यह क्षमा उसके लिए शोभनीय है, प्रशंसा के योग्य है। परन्तु यदि कोई भयंकर भेड़िया आक्रमण कर और नृशंसता पूर्वक अपने बालकों को चबाने लगे तो उसका प्रतिरोध न करना 'क्षमा' नहीं कही जासकती, यह कायरता या अशक्यता ही ठहरेगी।

क्षमा वीरों का धर्म है, अशक्तों का नहीं। जो पूर्ण स्वस्थ है उसके लिए खीर पुआ मोहनभोग, घी, रबड़ी का सेवन लाभदायक है पर जो रोग से चारपाई से रहा है, उठकर खड़े होने की शक्ति जिसमें नहीं, उसके लिए वे पौष्टिक पदार्थ लाभ-दायक नहीं है, उसके लिए तो वे अहित कर परिणाम ही उपस्थित करेंगे। वे निर्बल जो अपने न्यायोचित अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकते, अपनी आत्म रक्षा में सफल नहीं होते, यदि शान्ति और क्षमा की रट लगाते हैं तो समझना चाहिए कि अपनी निर्बलता और कायरता छिपाने का एक थोथा बहाना ढूंढते हैं। आततायियों से आत्मरक्षा करने के लिए उसका कड़ा मुकाबिला करने की धर्म ग्रन्थों और राजकीय कानूनों का समर्थन प्राप्त है।

हमें अपनी दुर्गति को रोकना है तो बकरी की स्थिति में ऊँचा उठना होगा। किसी पर आक्रमण करने का किसी को सताने का उद्देश्य कदापि न रखते हुए भी आत्मरक्षा के लिए हमें शक्ति सम्पन्न बनना चाहिए आततायियों के आक्रमण का मुँह तोड़ उत्तर देने की क्षमता हमारे अन्दर जैसे २ उत्पन्न होती जायगी वैसे ही वैसे अकारण शिर के ऊपर टूटते रहने वाले अनर्थों से छुटकारा मिलने लगेगा।

इंग्रेजी की एक कहावत है कि "शक्ति का प्रदर्शन, शक्ति के प्रयोग को रोकता है।" जिसके पास शक्ति होती है उसको उसका प्रयोग बहुत कम करना पड़ता है. उसका परिचय पाकर ही दुष्ट लोग दहल जाते हैं और दुष्टता का दुस्साहस करने की हिम्मत नहीं पड़ती। पर जहां वह निधड़क होते हैं कि न तो हमारे आक्रमण का मुकाबिला किया जायगा और न पीछे कोई दण्ड मिलेगा। वहां उनकी दुष्टता नंगे रूप में नाचने लगती है। ऐसी विषम स्थिति से बचने का एक मात्र उपाय शक्ति का परिचय देना ही है। बकरे की मां कबतक दुआ मांगती रहेगी. निर्बल की रक्षा बातूनी जमा खर्च से नहीं हो सकती।

धन कमाने और धर्म चर्चा करने की ओर आज हमारे समाज की प्रवृत्तियां विशेष रूप से हैं पर यह दोनों कार्य भी तब तक ठीक प्रकार नहीं हो सकते, जब तक अमनचैन का वातावरण न हो। अशान्त वातावरण का कारण शक्ति सन्तुलन का बिगड़ जाना है। इसे ठीक किये बिना जीवन की कोई दिशा स्थिर नहीं रह सकती. आज समय का तकाजा है कि हम अपनी निर्बलता और कायरता को निकाल फेंकें। संगठन करें, शारीरिक बल बढावें, आत्मरक्षा के लिए लाठी आदि की शिक्षा प्राप्त करें, और मुसीबत के समय एक दूसरे की सहायता करते हुए आततायियों के आक्रमण को विफल बनाने की तैयारी करें। हम आत्मरक्षा के साधनों से जब सुसज्जित होजायेंगे तभी बकरी की स्थिति से छुटकारा पासकेंगे। बाहर से और भीतर से होने वाले आक्रमण से बचने के लिए शक्ति संचय के पथ पर अग्रसर होना चाहिए। शक्ति से ही शान्ति स्थापित होती है।

भगवान कैसे दिखाई देंगे।

(श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती)

भगवान की व्यक्तिगत सूरतों को ईश्वर, अल्लाह, हरि, जेहोवाह, स्वर्गीय-पिता, विष्णु, शिव आदि कहा जाता है।

वेदान्ती-लोग उन्हें ब्रह्म कहते हैं। हर्बर्ट-स्पेन्सर उन्हें "जो न जाना जासके" ऐसा कहते हैं। शोपेन हेनर उन्हें "इच्छा" के नाम से पुकारते हैं। 'पूर्ण', 'पुरुषोत्तम' आदि नामों से भी कुछ लोग उन्हें पुकारते हैं और स्पिनोजा उन्हें 'तत्व' कहकर सम्बोधन करते हैं।

भगवान को पहिचानने में धर्म में विश्वास और उनकी पूजा में निष्ठा होनी चाहिये। यह विषय किसी गोष्ठी या क्लब में बैठ कर बहस करने का नहीं है। यह तो सत्य-आत्म की प्राप्ति का विषय है। यह मानव की सबसे गहरी आवश्यकता की पूर्ति है।

अतः अपने जीवन को उच्च बनाने के लिये धर्म की शरण लो। उसकी प्राप्ति के लिये प्रति-क्षण उद्योग करो और प्रत्येक-पल धार्मिक बनने के लिये जीवित रहो। बिना धर्म के जीवन से मृत्यु बहुत अच्छी है।

"स्वार्थान्धता को दूर करो। इच्छाओं का दमन करो। वहम या शङ्काओं को हटाओ हृदय को पवित्र करो। अपने विचारों पर मनन करो। अपने सिद्धान्तों पर विचार करो। जो गन्दगी या कूड़ा-करकट हो, उसे साफ करो। और इस प्रकार भगवान् को प्राप्त करो।" यही हर युग के सन्त-महात्माओं के उपदेशों का सार है। बुद्ध, ईशा, मुहम्मद शिन्टो, चैतन्यदेव, शङ्कर आदि के उपदेश को पढ़ो। तुम्हें साधन का यही सार मालूम होगा। यही भगवत्प्राप्ति का मार्ग है। भगवत्प्राप्ति ही तुम्हारा मुख्य-कर्त्तव्य है।

जिस प्रकार एक गाड़ी का कुशल हांकने वाला अपनी गाड़ी में जुते चंचल घोड़ों को रास या लगाम के द्वारा रोक-थाम करता है, उसी तरह तुम भी अपनी चंचल-इन्द्रिय-रूपी घोड़ों को विवेक और वैराग्य की लगामों के द्वारा रोक-थाम करो। तभी तुम्हारी उस परब्रह्म भगवान या सुमधुर आत्मा तक पहुंचने की यात्रा सकुशल पूरी होगी और तुम्हें वास्तविक सुख-शान्ति प्राप्त होगी।

सदैव सत्य बोलो सत्य के पथ से कभी विचलित मत होवो। यह ध्यान रक्खो कि सत्य का अभ्यास करने और पवित्र-जीवन बिताने के लिये ही तुम पैदा हुए हो। नेकी में ही सत्य का निवास है। सीधे खड़े हो, सुदृढ़ बनो, निर्भय होवो, सत्यवादी बनो और सत्य का अभ्यास करो। हर जगह सत्य का ही प्रचार करो।

वह व्यक्ति जो सदैव सत्य बोलता हो, जो दयावान हो, उदार हो, जो क्षमाशील और शान्त हो, जो हर प्रकार के भय से निर्भय हो, जिसने क्रोध और लालच को जीत लिया हो, जो परम पवित्र और प्रेमी हो, वही वास्तव में ब्रह्म है वही सच्चा ब्राह्मण है। जिसमें उपरोक्त गुण न हों, वे तो वास्तव में शूद्र ही हैं।

जब तक तुम अपने को बिना शर्त, बिना किसी स्वार्थ और निष्काम भाव से अपने को प्रभु की शरण में अर्पण नहीं कर देते, तब तक तुम उनकी कृपा के अधिकारी कैसे हो सकते हो? भगवान तुमसे कहीं अच्छी तरह यह बात जानते हैं कि तुम्हारा हित-अहित क्या है? पूर्ण रूप से अपना समस्त अपनत्व उन्हीं भगवानके पावन पाद-पद्मोंमें समर्पण करना मन्दिरों में जाकर दर्शन करने, घंटा घड़ियाल बजा कर पूजा करने और अन्य प्रकार की भगवत्सेवाओं से कहीं बढ़ चढ़ कर है। भगवान तुम्हारा ऊपरी दिखावा नहीं चाहते। वे तो तुम्हारा हृदय चाहते हैं। एक बार प्रेम से ऐसा कहदो—"प्रभु! तेरी इच्छा पूरी करूंगा, मैं तेरा हूँ, मेरे पास जो कुछ भी है सभी तो तेरा ही है।" किन्तु यह बात हृदय की अन्तरात्मा से निकले। सच्चाई और निष्ठा के साथ। शुद्ध प्रेम में मतवाले बन कर रुदन करो एकान्त में उनके लिये विलाप

करो ऐसे ढंग से रोओ कि तुम्हारे सब वस्त्र तुम्हारी अश्रु-धारा से भीग कर सराबोर हो जांय।

अपनी आंखों को बन्द करो। दुनियां, शरीर और समस्त वासनाओं को नष्ट करो। सब ओर से मन को खींच लो। केवल एक प्रभु में लीन हो जाओ। तब असली अमरत्व के अमृत का पान करो।

भगवान श्रीकृष्ण का सच्चा भक्त अपने कृष्ण को समस्त संसारमें देखता है जिसकी उसकी दृष्टि जाती है, उधर ही उसे कृष्ण दिखाई देते हैं। उसे दिव्य योग के चक्षु और योग की दृष्टि प्राप्त होगई है।

ऐसा सोचना कि तुम दुनियां से पृथक हो, भारी मूर्खता है। तुम दुनियां में हो और दुनियां तुम में है। दुनियां के किसी प्राणी को कष्ट पहुँचाना तुम्हें अपने को ही कष्ट पहुंचाने के बराबर है। विश्वरंजन का हानि लाभ तुम्हारा ही हानि लाभ है। चन्द्रशेखर को प्रेम करना अपने को ही प्रेम करना है। दुई का भाव निकाल दो। दुई में मृत्यु है और एकत्व में असली जीवन है।

मित्रों! भगवान के दर्शन पाना बहुत कठिन नहीं है। उन प्रभु को प्रसन्न करना उतना अधिक कठिन नहीं है। वे सर्वव्यापी और घट-घट वासी हैं। वे तुम्हारे हृदय में निवास करते हैं। उन्हीं का सदैव चिन्तन करो। उनके साकार और सगुण रूपका ही ध्यान करो। नित्य ऐसी प्रार्थना करो— 'हे भगवान! मुझ पर दया करो। मेरी अन्तः दृष्टि खोल दो। मुझे दिव्य चक्षु प्रदान करो। मुझे ऐसी अनन्त दृष्टि कृपा कर दो कि मैं विश्व रूप दर्शन कर सकूँ। भक्त गण आपको पतित-पावन कह कर आपके गुणों का गान करते हैं। भक्तवत्सल! दीनदयाल!! मुझ पर भी दया करो। हे दयासागर! जिस प्रकार पक्षी अपने बालकों को अपने पंखों के भीतर छुपा कर रक्खा करते हैं, उसी प्रकार तुम भी मुझे अपनी चिर-शान्तिदायिनी शरणमें लेकर मेरा उद्धार करो।

ऐसी प्रार्थना सच्चे हृदय से, प्रेम और निष्ठा से नित्य करने पर अवश्य ही तुम्हें भगवान के दर्शन होंगे। तब तुमसा भाग्यवान फिर कौन होगा?

कर्मयोग के मार्ग की श्रेष्ठता।

(पं० दीनानाथ भार्गव दिनेश)

कर्मयोग के मार्ग की श्रेष्ठता यही है कि इसमें लड़ते २ मृत्यु से लड़जाने पर स्वर्ग निश्चित हो जाता है और विजय प्राप्त कर लेने पर संसार का राज्य मिलता है।

संसार कायर पुरुषों के रहने का स्थान नहीं है। विजयी ही इसके सुखों का उपभोग कर सकते हैं। विजयी पुरुष ही सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होकर संसार का शासन करते हैं। हिन्दूधर्म शास्त्रों में कहीं भी कायरता और ग्लानिपूर्ण दीन हीन जीवन को स्थान नहीं दिया गया है पर आश्चर्य तो यह है कि आज हिन्दुओं ने ही आत्म सम्मान के मान का मस्तिष्क झुका दिया है।

पृथ्वी का राज्य पानेके लिए पृथ्वी के सुख का त्याग, शान्ति, क्षमा, मैत्री और करुणा के मिथ्या भावों ने भारतीयों के गौरवपूर्ण मुकुट की मणि को कान्तिहीन कर दिया है। योगी अरविन्दके शब्दों में, 'गीता में वर्णित मार्ग को त्याग कर, इससे दूर शान्तिमय आश्रम में पहाड़ की गुफा में या निर्जन स्थान में गीतापथ के पथिक भगवान् का दर्शन लाभ नहीं करते। वे तो बीच मार्ग में ही कर्म के कोलाहल में। (युद्ध में) इस स्वर्गीय दीप्ति से जगत् को आलोकित करते हैं।'

विश्व भीषण-संग्राम क्षेत्र है, कौरवों तथा पाण्डवों की बृहत्सेना का मध्य स्थल है, शस्त्रप्रहार हो रहा है, जो लोग कर्तव्य कर्म में लगे हुए हैं, वे इधर उधर विचलित नहीं होते। विजयी होकर ऐसे पुरुष ही संसार के सुख को भोगने के अधिकारी हैं। विकारी भावों में संसार विकारी हो सकता है परन्तु हमारे शास्त्र तो कहते हैं—"वीर भोग्या वसुन्धरा"—वीर ही पृथ्वी का राज्य भोगते हैं। भारत वर्ष की स्त्रियां धर्मराज तक से कहने का सामर्थ्य रखती थीं—

"पराक्रम के आश्रय में रहनेवाली समृद्धियें विषाद के साथ कभी नहीं रहतीं।" ——

क्रोध का स्वास्थ्य पर प्रभाव

(श्री डा० बनारसीदास जैन)

क्रोध एक भयंकर शत्रु है । क्रोध में आकर मनुष्य अपना सर्वनाश कर बैठता है । किसी ने ठीक ही कहा है कि "जिस प्रकार बवन्डर अपने प्रकोप से पेड़ों को चीरता फाड़ता हुआ प्रकृति की आकृति को बिगाड़ देता है, या भूकम्प अपने क्षोभ से बड़े २ नगरों को उलट-पुलट देता है ठीक उसी तरह मनुष्य का क्रोधावेग अपने आसपास अनेक उत्पात खड़े कर लेता है । संकट और विनाश तो उसके सिर पर ही मंडराया करते हैं ।" इससे स्पष्ट है कि जहां क्रोध है वहां शान्ति नहीं रह सकती । गीता में कहा है कि "क्रोधात् भवति संमोह संमोहात् स्मृति विभ्रमः । स्मृति भ्रंशाद बुद्धि नाशो बुद्धि नाशात् प्रणश्यति"॥ अर्थात् जिस मनुष्य पर क्रोध का भूत सवार हो जाता है उसकी विवेक बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । वह सुपथ को त्याग कुपथ को ग्रहण करता है और अन्त में नाश को प्राप्त होता है । क्रोधी व्यक्ति अन्धे और बहरे की भांति चेतन रहते हुए भी अचेतन के समान कोई भी कर्त्तव्य स्थिर करने में असमर्थ होता है । क्रोधी मनुष्य को उचित अनुचित का ध्यान नहीं रहता । वह सदा डांवा-डोल रहता है, कभी-कभी तो वह पागल होकर मर तक जाता है । क्रोधी मनुष्य शारीरिक, मानसिक, नैतिक या आध्यात्मिक किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकता ।

विद्वानों का कथन है कि इस मनोविकार के प्रबल हो जाने पर खून में एक प्रकार का विष पैदा हो जाता है जिससे क्रोधी मनुष्य को बहुत हानि होती है । यही वजह है कि क्रोधी प्रायः दुर्बल रहते हैं । क्रोधी मनुष्य का खून इतना जहरीला हो जाता है कि उसके खून की एक बून्द खरगोश आदि जीवों के शरीर में पिचकारी द्वारा डालने से उनकी दशा बड़ी खराब हो जाती है । जिस खरगोश के शरीर में उसका प्रयोग किया जाता है वह दूसरे खरगोश को फाड़ खाता है और कभी-कभी मर तक जाता है । इसीसे क्रोध आत्मघात के तुल्य है । क्रोध में आकर मनुष्य ऐसे २ काम कर डालता है कि जिसमें उसे बाद में पछताना पड़ता है तथा भयंकर सन्ताप सहना पड़ता है ।

क्रोधी मनुष्य कभी स्वस्थ नहीं रह सकता । उसका चेहरा पीला पड़ जाता है । शरीर सूखकर कांटा हो जाता है । पाचन-शक्ति तो बिल्कुल ही बिगड़ जाती है जिसके फलस्वरूप शरीर रोगों का घर बन जाता है । क्रोधी मनुष्य की नाड़ी की गति तेज हो जाती है । रगें ऊपर की ओर खड़ी हुई दिखाई देती हैं । क्रोधावेश में वह दांत पीसने लगता है, उसकी सांस जल्दी २ चलने लगती है, भौंएं और हाथ सिकुड़ने लगते हैं । उसका शरीर रोमांचित हो जाता है, वाणी बदल जाती है, चेहरा लाल हो जाता है, जबान खुश्क हो जाती है और खून में गर्मी पैदा हो जाती है । हारवर्ड मैडीकल कालेज के प्रोफेसर डाक्टर वाल्टरकेनिन लिखते हैं कि "मनुष्य के दोनों गुर्दों के ऊपर चने के दाने के बराबर दो छोटी २ ग्रन्थियां होती हैं जिनमें से एक प्रकार का पदार्थ निकलता है जिसको एड्रेनलिन (Adrenalin) कहते हैं । यह पदार्थ जब खून में मिलकर जिगर में पहुँचता है तो वहां जमे हुये ग्लाईकोजन (Glycogen) को शक्कर में बदल देता है । यह शक्कर खून में मिल कर नाड़ियों के द्वारा शरीर के तमाम हिस्सों में पहुँच जाती है जो रग और पट्ठों में बहुत खिचावट पैदा करती है ।

एक प्रसिद्ध विद्वान् "रुकेका" का कथन है कि "क्रोध दुर्भाग्य की तरह जिस पर सवार होता है उसका विनाश करके छोड़ता है । यह लकवे की तरह अन्त में अंगों को शक्तिहीन करके छोड़ता है । क्रोधावेश में प्रथम तो मनुष्य नशे की तरह उत्तेजित होता है और अपने अन्दर कई गुनी कार्य-शक्ति अनुभव करने लगता है, किन्तु अन्त में क्रोध का नशा उतरते ही वह निर्बल हो जाता है । शराबी की तरह वह दुबला-पतला हो जाता है, मस्तिष्क एवं विचार शक्ति क्षीण हो जाती है । यह क्षणभर का

आवेग दीर्घ कालीन पाश्चाताप का कारण बन जाता है।"

बाईबिल में भी लिखा है कि "जो मनुष्य क्रोधावस्था में शयन करता है मानो वह एक विषधर सर्प को अपनी बगल में दबाकर सोता है।" सचमुच क्रोध विषधर से किसी प्रकार कम नहीं है। विषधर तो शरीरान्त करता है किन्तु क्रोध धीरे धीरे कष्ट पहुँचाता हुआ देह एवं आत्मा दोनों का पतन करता है। इसका कष्ट चिरकालीन होता है। अतः यह सर्प से भी बढकर भयंकर शत्रु है।

केलूलैंड के डाक्टर अरोली ने इस संबंध में कई तरह के परीक्षण किये हैं। उनका कथन है कि खून में शकर की अधिकता के कारण कुछ ऐसे तेजाब पैदा हो जाते हैं जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक और घातक हैं। यही वजह है कि उन्नतिशील पाश्चात्य देशों में शारीरिक दण्ड की घृणित प्रथा स्कूलों से उठती जा रही है। किन्तु खेद के साथ कहना पडता है कि हमारे देश में अब भी इस घातक दण्ड पद्धति का बोलबाला है जिसके फलस्वरूप बालक अपना विकास पूर्णरूपेण नहीं कर सकते। क्या माता-पिता और शिक्षक इन नवीन गवेषणाओं से फायदा उठाकर निर्दोष बालकों को डराना या उन पर हाथ उठाना एक असभ्य अपराध समझेंगे?

क्रोध से बचने के उपाय—

क्रोध से बचने का स्थायी और वास्तविक उपाय तो यही है कि हम क्रोध के कारण को मालूम करने की कोशिश करें। क्रोध का आरम्भ या तो मूर्खता से या दुर्बलता से अथवा मानव स्वभाव से अनभिज्ञता के कारण होता है। जब कोई व्यक्ति हमारा कहना नहीं मानता या हमारी इच्छा के विरुद्ध काम करता है तो हम आपे से बाहर हो जाते हैं और उस पर बेतहाशा बरस पडते हैं। हम यह समझने की तकलीफ ही नहीं करते कि हमें दूसरों को अपनी इच्छानुसार चलाने का क्या अधिकार है। हम अपने रोजमर्रा के अनुभव से भली प्रकार जान सकते हैं कि प्रत्येक मनुष्य की वृत्ति दूसरे मनुष्य से भिन्न होती है। ऐसी हालत में सभी मनुष्य एक ही लाठी से कैसे हांके जा सकते हैं। मनोविज्ञान के इस अटल सिद्धान्त को समझलें तो हम बहुत हद तक क्रोध के चंगुल में पडने से बच सकते हैं और आनन्द से जीवन व्यतीत कर सकते हैं। सर्वसाधारण के लाभार्थ कुछ सरल उपाय भी नीचे दिये जाते हैं जिन पर अमल करने से क्रोध को शान्त किया जा सकता है।

जब क्रोध के उत्पन्न होने की तनिक भी सम्भावना हो तब हमें सावधान हो जाना चाहिए या उस समय कहीं चले देना चाहिए। अगर क्रोध का आक्रमण हो चुका हो तो कुछ देर के लिए उस प्रसंग को बदल देना चाहिए तथा किसी दूसरे मनोरंजक विषय या अन्य काम की ओर अपने चित्त को लगाने का प्रयत्न करना चाहिए। मौनावलम्बन तो क्रोध शांति का एक अचूक साधन है। एक गिलास ठण्डा जल पीलिया जावे या स्नान कर लिया जावे तो भी क्रोध पूर्णरूपेण शान्त नहीं तो घट अवश्य जाता है। जैसे जलती हुई लकडी पर पानी डालने से उसका वेग कम हो जाता है उसी प्रकार गुस्से में ठण्डा जल पीने से उसका वेग कम हो जाता है। एक बात और है—अगर हम दूसरों की आलोचना न करके अपनी ही आलोचना करने की आदत डाल लें तो क्रोध वेग से बहुत कुछ छुटकारा पा सकते हैं। पर अफसोस तो यह है कि हम अपनी आंख का तो शहतीर भी नहीं देखते किन्तु दूसरे की आंख का तिल भी हमें खटकने लगता है। यदि क्रोध से छुटकारा पाना है तो हमें अपनी इस बुरी आदत को बदलना होगा, दूसरों पर जबरन अपनी बात लादने का मोह छोडना होगा और सबके साथ मृदुता से पेश आना होगा क्योंकि किसी ने ठीक ही कहा है कि मधुर जवाब क्रोध को दूर भगाता है।

उद्योग पुरुष अपना मार्ग ढूँढता या उसे स्वयम् बना लेता है।

× × ×

वासनाओं को त्यागो, संसार को नहीं।

(श्री दौलतरामजी कटरहा बी. ए. दमोह)

वह धर्म जो संसार के कर्त्तव्य-कर्मों को त्याग ने का उपदेश देता है, जन साधारण का धर्म नहीं हो सकता। बौद्ध-धर्म अधिकतर सन्यासियों का धर्म था तथा स्वयं भगवान् बुद्ध ने भी अनेकों शिष्यों को प्रव्रजित कर अपने धर्म में दीक्षित किया था। संसार को दुःख रूप और सार हीन बताकर संसार से दूर भागने का उपदेश करने वाली फिलासफी-वाला यह धर्म साधारण जन समाज की आवश्यकताओं, आशाओं तथा आकांक्षाओं की पूर्ति न कर सकता था, यही कारण है कि वह थोड़े से समय तक अपनी अलौकिक छटा और चमक दमक दिखाकर उसका मूलरूप संसार से विलीन-प्रायः हो गया।

संसार के कर्त्तव्य-कर्मों को न त्यागने का अर्थ संसार से आसक्ति नहीं है। जीवन का अर्थ है विकास और अनुभव की प्राप्ति। संसार में रहकर जिन्होंने सत्य तथा अहिंसा आदि व्रतों का निर्वाह किया है उन्हीं के द्वारा इन गुणों की जीवन में व्यावहारिकता और साध्यता निष्पन्न हुई है उन्होंने ही यह सिद्ध कर दिखाया है कि जीवन में पूर्ण रूप से इन गुणों का निर्वाह करना सम्भव है। उन लोगों ने जो कि संसार को झंझट समझ बैठे थे, इन गुणों को व्यवहार में लाकर संसार के सामने आदर्श उपस्थित नहीं किया। इनकी व्यावहारिकता को सिद्ध करने वाले तो जनक, युधिष्ठर, हरिश्चन्द्र और शिवि आदि राजर्षि थे। संसार में रहकर जीवन रूपी पहेली को किस तरह सुलझाना चाहिए यह हमें इन्हीं महानुभावों के अनुभवों से ज्ञात हो सकता है। कर्म-क्षेत्र से दूर रह कर शील और चरित्र का कोरा उपदेश करने वाले लोगों की बातें उतनी हृदय-ग्राहिणी नहीं हो सकतीं जितनी कि इनकी। वस्तुतः संसार-क्षेत्र में प्रवेश करने पर ही हम अपने अनुभवों और आध्यात्मिक सिद्धान्तों को व्यवहार में लाकर हृदयंगम कर सकते हैं। सिद्धान्तों का अन्यथा कोई अर्थ नहीं। संसार से भागने पर यह नहीं हो सकता। इसीलिये तो यह संसार व्यवहार-क्षेत्र, प्रयोग-क्षेत्र या कर्म-क्षेत्र है। संसार से भागने का अर्थ है संसार से भयभीत होना।

भगवान शिव कामजयी हैं। वे गृहस्थ हैं और कामोद्दीपक वस्तुएं पास रहते हुए भी विकार-शून्य ही रहते हैं। वस्तुतः विषयों के समीप रहते हुए भी विकार-शून्य रहने वाला ही विषयों का जीतने वाला तथा जितेन्द्रिय है तथा धीर पुरुष वही है जिसका चित्त विकार का हेतु (आलंबन) विद्यमान रहते हुए भी विकृत नहीं होता। ऐसी धीरता केवल गृहस्थ ही प्राप्त कर सकते हैं अतएव केवल गृहस्थ ही काम जयी तथा पूर्ण होने का दावा कर सकता है। गृहस्थ जीवन से ही पूर्णता प्राप्त हो सकती है इसीलिए तो गार्हस्थ्य धर्म सर्व श्रेष्ठ है और उसकी इतनी महिमा है।

जीवन की सफलता इसीमें है कि हम जीवन को सर्वाङ्ग-पूर्ण बनाएं और उसका पूर्ण विकास करें। हमारे जीवन के चार पहलू हैं:—आध्यात्मिक मानसिक शारीरिक और साम्पत्तिक। इन चारों दिशाओं में उन्नति करना ही हमारे जीवन का लक्ष्य है और तभी हमारा विकास सर्वाङ्गीण कहला सकता है। उस व्यक्ति का जीवन हमारे लिए आदर्श नहीं हो सकता जो कि एक महान विद्वान है किन्तु जिसका चरित्र सन्देहास्पद है या जिसकी शारीरिक सम्पत्ति अत्यन्त क्षीण है। इस पुरुष का जीवन तो एकाङ्गी है और इसका मिलान तो हम उस चित्र से कर सकते हैं जिसमें सिर तो भारी भरकम बनाया गया हो किन्तु सारा शरीर कांटे जैसा हो। अतएव संसार त्यागने पर हमारा जीवन इसी चित्र जैसा होगा।

संसार के त्याग का अर्थ है उसका सदुपयोग और तज्जन्य अनुभवों की जीवन में न्यूनता। एक संन्यासी का जीवन जिसने कभी गृहस्थाश्रम में

प्रवेश नहीं किया पूर्ण नहीं है और वह हमारे लिये पूर्णतया अनुकरणीय नहीं हो सकता। उसे सांसारिक अनुभव नहीं, जीवन का उसका अनुभव अपूर्ण है, एकांगी है, एकदेशीय है, भले ही वह एक प्रख्यात संन्यासी ही क्यों न हो वह अतिवादी है और सम्भव है कि उसके अनेकों विचार संतुलित न हों।

सफल जीवन का अर्थ है अनेकों विरोधाभासों का समन्वय, संतुलन और सामंजस्य। जिसे सुख और दुख दोनों का ज्ञान है, जो जीवन की सब अवस्थाओं में से होकर गुजरा है, जिसका अनुभव सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक है वही हमारे लिये आदर्श हो सकता है। भगवान् ईसा को गृहस्थी का अनुभव नहीं हुआ था और न उन्हें भगवान बुद्ध की नाईं कभी इस बात का ज्ञान हुआ कि अपने प्राण प्रिय परिजनों के मोह का त्यागना कितना कठिन होता है। भगवान बुद्ध को भी ऐसे दुष्ट और हत्यारे लोगों के बीच में धर्म-प्रचार करने का अनुभव नहीं हुआ था जैसा कि महात्मा ईसा और पैगम्बर मुहम्मद साहिब को। सुकरात जैसे महात्मा को जेंटिपी जैसी कुर्कशा स्त्री के साथ समस्त जीवन यापन करने में जो विशेष अनुभव हुआ वह भगवान राम को नहीं हुआ। अतएव हम देखते हैं कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना ही महान क्यों न हो सब परिस्थितियों में से होकर नहीं गुजर सकता और न उसे जीवन का सर्वाङ्गीण अनुभव ही हो सकता है। ऐसी दशा में केवल एक ही मनुष्य के जीवन को पूर्ण समझ बैठना, उसी एक की वाणी को ही, उसी एक की रची पुस्तक को ही, मान्य विश्वसनीय या प्रामाणिक मानना, उसी एक को ही आदर्श मान बैठना कितनी भारी भूल होगी और क्या हमने कभी सोचा है कि यही भूल हमारे साम्प्रदायिक झगड़ों के मूल में विद्यमान रही है।

प्राचीन काल के हिन्दुओं ने अपने जीवन को चार भागों में बांट लिया था। यह बड़ी बुद्धिमत्ता का बात थी। उन्हें जीवन की सभी परिस्थितियों और पहलुओं का ज्ञान हो जाता था और इस तरह वे अपने जीवन और अनुभव को पूर्ण बनाया करते थे संसार में रहते हुए संसार से विरक्त रहने की कल्पना ऐसे ही लोगों को हो सकती थी।

भगवान कृष्ण ने अपनी गीता में स्थान स्थान पर कर्मयोग की शिक्षा दी है। उन्होंने हमें वासनाओंके शमन करने का आदेश दिया है। वासनाओं को त्यागे बिना संसार को त्यागने की बात उन्होंने कभी नहीं कही। उनकी यह उक्ति कि "जो पुरुष मन से भोगों का चिन्तन करता है तथा इन्द्रियों को उनसे बलात् रोकता है, मिथ्याचारी कहलाता है," इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य है। भगवान् का आदेश है कि हम तब तक कर्म करते रहें जब तक कि हमारी वासनाएं परिमार्जित नहीं हो जातीं और हम तब तक संसार को छोड़ने की बात न सोचें जब तक कि हमें भक्तिभाव का आधिक्य ही एतदर्थ प्रेरित तथा बाध्य नहीं करता।

संन्यासी कहता है कि संसार को छोड़ो, गृहस्थ कहता है गृहस्थी में ही बने रहो दोनों अपने अपने दृष्टि-कोण से बात करते हैं, दोनों अपना अपना अनुभव सामने रखते हैं। अतएव न तो पूर्णतया यह सच है न वह। बेचारे छः जन्मांधों में से प्रत्येक ने हाथी को भिन्न भिन्न आकार का बताया था। इसीलिये प्रश्न का सुलझाव यही है कि हम समन्वय की नीति का या माध्य-मार्ग का अनुकरण करें। संन्यासी का तात्पर्य वासना-त्याग से है और गृहस्थ का गृहस्थ-धर्म पालन से। अतएव हमारे जीवन का लक्ष्य वासनाओं का त्याग है संसार का नहीं। हमें अपने प्रियजनों का मोह त्यागना है न कि प्रियजनों को ही। हमें भोजन को नहीं त्यागना है बल्कि त्यागना है स्वाद-सुख को, उसमें सुख की कल्पना भावना को। वस्तु को मत त्यागो, त्यागो उसकी आसक्ति को।

कच्चे सूत के पलंग पर बैठने वाला मनुष्य जैसे नीचे गिर जाता है, उसी प्रकार विषय-सेवन के आश्रय में जाने वाला नीचे ही गिरता है अर्थात् उसकी अधोगति होती है। × ×

धर्म बनाम सम्प्रदायिकता

धर्म का रूप प्रेम है और अधर्म का रूप है द्वेष। मानव-समाज में शान्ति सद्भावना और भ्रातृत्व को अक्षुण्ण बनाए रखना ही धर्म का ध्येय है। जो लोग सम्प्रदायिकता के चक्कर में पड़ कर इसके विपरीत उपदेश करते हैं परस्पर दुर्भावना और वैमनस्य फैलाते हैं वे संसार में धर्म की सेवा नहीं, प्रत्युत पाप का पुष्ट करते हैं। सच पूछिए तो मानव मात्र के लिए धर्म एक ही है। जितने मुण्ड उतने धर्म — यह साम्प्रदायिकता का ही परिणाम है। आज धर्म के नाम पर जैसी धांधली मची हुई है, उसे देख कर मानव समाज का एक वर्ग धर्म का अस्तित्व ही मिटाने पर तुल गया है। उसकी धारणा यह है कि यदि धर्म से मानवी प्रेम, एकता और बन्धुत्व के बदले परस्पर द्वेष-दुर्भाव और लड़ाई-झगड़े होते हैं तो उसका जितना शीघ्र लोप हो जाये मनुष्य समाज के लिए उतना ही कल्याणकारक होगा। वास्तव में धर्म वह चीज है, जो आत्मा को परमात्मा का बोध कराती है। किन्तु आज संसार की विचित्र दशा है। धर्म के नाम पर अनेक सम्प्रदाय बन गए हैं, एक सम्प्रदाय अपने को दूसरे सभी सम्प्रदायों से श्रेष्ठ समझता है और अपने अनुयायियों को यह शिक्षा देता है कि उसके द्वारा ही ईश्वर और मोक्ष की प्राप्ति होगी और अन्य सम्प्रदाय वाले नरक में जायंगे। इसलिए तो स्व० मौलाना मुहम्मद अली जैसे विद्वान् तक का विचार था कि नीच से नीच मुसलमान भी महात्मा गांधी से श्रेष्ठ है। इस प्रकार की संकुचित साम्प्रदायिक भावना से ही परस्पर संघर्ष होता रहता है।

लोग यह नहीं देखते कि किस मनुष्य का चरित्र कितना ऊंचा है। उसने साधना द्वारा कितनी आत्मोन्नति कर ली है, प्रत्युत साम्प्रदायिकता की दूरबीन चढ़ा कर वे अपने अपने मजहबी ट्रेड मार्क को ही सर्वोपरि कहने में बद्धपरिकर रहते हैं। कभी-कभी उसका वीभत्स रूप देख कर सहसा हृदय से यह उद्गार निकल पड़ता है कि यदि यही धर्म है तो अधर्म की परिभाषा क्या होगी।

साम्प्रदायिकता के इस गर्हित रूप को देख कर हमारे देश के कुछ विवेकशील नव युवकों को धर्म से घृणा हो रही है। और वे उसकी हस्ती मिटाने पर तुल गये हों इसमें विस्मय की बात ही क्या है? पुरातन काल में जहां धृति क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह धी, विद्या, सत्य और अक्रोध को जीवन में घटाना ही धर्म समझा जाता था वहां आज नाना प्रकार के सम्प्रदायों की सृष्टि हो जाने के कारण अशान्ति कलह, उपद्रव और पारस्परिक विग्रह ही मजहबी दीवानों का धर्म बना हुआ है। संसार में ऐसे कौन से कुकृत्य हैं, जो धर्म के नाम पर नहीं हुए। यूरोप की साम्प्रदायिकता का इतिहास खूनी घटनाओं से रँगा हुआ है। जब वहां पर आडम्बर और अन्ध विश्वास के विरुद्ध कुछ विवेकशील व्यक्तियों ने विरोध की आवाज उठाई तो उनको जीते जी आग में इस नृशंसता से जलाया गया जिसका वर्णन पढ़ कर रोम-रोम कांप उठता है। इस बीसवीं सदी में भी कुछ दिन पहले अफगानिस्तान में एक ऐसी घटना घटी थी, जिसे सुन कर सारी दुनियां दंग रह गई। कुरान शरीफ पर अविश्वास करने के कारण दो आदमियों का आधा शरीर ज़मीन में गाड़ दिया गया और फिर जो कोई उस रास्ते गुजरता उन अधगड़े व्यक्तियों पर पत्थर मारते मारते जाना सवाब समझता था। इस प्रकार उनके शरीर पर पत्थरों का ढेर लग गया। इस नृशंसता की महात्मा गांधी ने बड़ी आलोचना की थी। मजहब के नाम पर इस नृशंस कृत्य को मानवी नहीं दानवी बताया था।

अब संसार के विवेकशील पुरुष यह समझने लगे हैं कि धर्म का सम्बन्ध आत्मा से है और शरीर का सम्बन्ध समाज से और इसलिए

वे देश और समाजहित के कार्यों में धर्म का दखल देना उचित नहीं समझते। हमारे पड़ौस जापान में भी इसी नीति का अवलम्बन किया जाता है। एक ही परिवार में एक भाई बौद्ध है तो दूसरा कन्फ्युशस, तीसरा ईसाई है तो चौथा नास्तिक किन्तु इससे उनकी राष्ट्रीयता और पारम्परिक प्रेम में कोई अन्तर नहीं आता। मुस्तफा कमाल अतातुर्क ने तो टर्की का रूप ही बदल दिया, खिलाफत का जनाजा निकला और यह घोषणा कर दी कि राज्य से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है इसका परिणाम यह हुआ कि जो टर्की यूरोप का मरीज़ समझा जाता था, आज वही अपने शौर्य, साहस और शक्ति से संसार को विस्मय में डाल रहा है। मिश्र ईरान ईराक़ और चीन की अवस्था भी बिलकुल बदल चुकी है। वहां भी राष्टवाद के समक्ष धर्म को गौण माना जाता है। अमानुल्ला ने अफगानिस्तान को भी नए सांचे में ढालने का प्रयत्न किया था, किन्तु विदेशियों के दलालों ने मदान्धों को उकसा कर उसकी मुराद पूरी न होने दी। इस प्रकार इस समय विश्व का नक़शा ही बदल गया है। हर देश और राष्ट्र जमाने की दौड में सबसे आगे रहना चाहता है, किन्तु हमारा अभागा देश अटल चट्टान की नाई अपने पुराने स्थान से जरा हिलना डुलना नहीं चाहता। दासत्व ने उसे नितान्त अकर्मण्य और चेतना रहित बना दिया है। प्रायः यह देखने में आता है कि पराधीन राष्ट्रों में ही मजहबी मामलों में ज्यादा दिलचस्पी ली जाती है। उनके ऊपर उत्तरदायित्व का कोई कार्य होता ही नहीं। विदेशी शासक राज्यतन्त्र का संचालन करते हैं, इसलिये दास प्रजा प्रायः धर्म के नाम पर तर्क और वितर्क और लडाई-झगड़े करने में ही मशगूल रहती है।

हम धर्म के नाम पर धर्म-द्रोह का कटुफल काफी मात्रा में चख चुके हैं और अब भी चख रहे हैं। इसने हमें सहिष्णुता के स्वर्गीय सरोवर से निकाल कर नरक की नाली में नहलाया है, कल्याण पथ से हटाकर कुमार्ग का पथिक बना दिया है स्वाधीनता के स्वर्ग से ढकेल कर गुलामी के गर्त में गिराया है, सद्भाव की सुगन्धि के बदले द्वेष की दुर्गन्ध में बोर दिया है. सौहार्द की सुधा छुडा कर वैर-विरोध का विष पिलाया है। हम अपनी सम्प्रदायिक मनोवृत्ति के कारण दुनियां में बुरी तरह से बदनाम हो रहे हैं। विश्व की प्रजा हमें नफरत की निगाह से देखती है और सोचती है कि हम सदा गुलाम रहने योग्य हैं। अब भी समय है, सजग हो जाना चाहिये, धर्म के असली रूप को पहचानना चाहिए। धर्म का यह धन्धा नहीं है कि वह मानव समाज में फूट और वैर फैलावे, वह तो स्नेह सद्भावना, सहनशीलता सौहार्द और सात्विक सिद्धान्तों का स्रोत है, वह मानव जीवन को उच्च और पवित्र बनाने का साधन है। जब हम धर्म के विशुद्ध रूप को जान कर तदनुकूल जीवन व्यतीत करने का संकल्प कर लेंगे और संकुचित सांप्रदायिकता को त्याग कर मनुष्य का मूल्य उसके आचरण से आंकेंगे, तभी हम राष्ट्रीय भावनाओं को पुष्ट कर सकेंगे, जातीय जीवन की ज्योति जगमगा सकेंगे ध्यान रहे कि गुलाम प्रजा का कोई धर्म नहीं होता। धर्म और दासता में उतना ही अन्तर है जितना कि परमात्मा और पिशाच में। परमात्मा हमारे देश को सच्चे धर्म से ओतप्रोत कर दे, यही मेरी कामना है।

कुविचारों से छुटकारा कैसे मिले

(श्री विश्वमित्रजी वर्मा)

बहुतों को चिंता, भय, शोक, द्वेष, ईर्ष्या आदि के विचार सताते रहते हैं—वे इन विचारों को हटाने का प्रयत्न भी लाखों करते हैं तो भी दूर नहीं होता वे इन बुरेविचारों को, उन्हीं का चिंतन बार बार करके हटाने का प्रयत्न करते हैं—कि ये विचार हट जायं—परन्तु ऐसा कदापि नहीं होता और हो भी नहीं सकता। इस प्रकार हम बुरे विचारों को नहीं हटा सकते। हमें चाहिए कि जब हममें बुरे विचार आवें—तो उन्हें हटाने का कभी प्रयत्न न करें बल्कि तुरन्त ही शुभ विचार करना आरंभ करदें।

हमें यह अच्छी तरह मालूम है कि जब बच्चा अप्रसन्न हो जाता है, रोता है। तब हम उसे याद कहें कि प्रसन्न हो जाओ। रोना बन्द करो, तो वह और भी अधिक अप्रसन्न होगा, अधिक रोवेगा। इस बला से दूर होने के लिए जब हम बच्चे को अच्छी मिठाइयां खाने को देते हैं, या बाजा या खिलौना उसके हाथ में दे देते हैं तो वह झट से रोना बंदकर देता है—प्रसन्न हो जाता है. और उन्हीं खिलौनों से खेलने लगता है उसका मन उन्हीं खिलौनों में रम जाता है, फिर यदि उसे उसके रोने की बात याद दिलाई जाय तो वह पहले तो ध्यान ही नहीं देता—फिर जब हम बार बार उसे उसी बात की याद दिलाते हैं तब रोना आरंभ करता है। देखा आपने शुभ और अशुभ संकल्पों का प्रभाव?

पहले उसके मनमें अप्रसन्नता के विचारों ने स्थान पा लिया था—जो एक शुभ संकल्प-मन बहलाव से नहीं हटे—जब बार बार उसका मन शुभविचारों मिठाई और खिलौनों द्वारा बहलाया गया—तब बुरे विचारों ने भागना आरंभ किया क्योंकि नये विचार आना आरम्भ हो गया था—ज्यों ज्यों नये शुभविचार आने लगे—बुरे विचारों का स्थान मनमें से खाली होने लगा—यहां तक कि शुभ विचारों के आधिक्य से बुरा विचार एक भी न रह सका और बच्चा प्रसन्न हो गया। हम बच्चे के मनमें प्रसन्नता के विचार भेजते रहे—विचारों ने उसके मनमें दृढता प्राप्त करली। पुनः जब किसी दूसरे बहकाने वाले आदमी ने बुरे विचार प्रेरित करना आरम्भ किया तो पहले कुछ देर तक तो असर ही न पड़ा; जैसे शुभ विचार रोते समय देने में पहले असर न पड़ा था। फिर जब बार बार उसको रोने की बात याद दिलाई तो शुभ विचारों को अशुभ विचारों ने भगा दिया—इस प्रकार त्यों त्यों शुभविचारों का स्थान मनमें से रिक्त होता जाता है और रोने के कारण अधिकाधिक आने लगे—जब शुभ विचार एक भी न रहा—अशुभ विचारों ने पूर्ण मन पर स्थान पा लिया तब बच्चा फिर रो दिया।

एक मनुष्य या कोई भी प्राणी अपनी ही जाति वाले के साथ—अपनी ही बराबरी वाले व्यक्ति के साथ रहेगा—छोटे बड़े शुभ-अशुभ, कौआ और हंस का संयोग कभी नहीं हो सकता और निभ भी नहीं सकता यही बात हमारे विचारों के संबंध में लागू होती है जब हम कोई बुरा विचार अपने मनमें लाते हैं तो उससे अन्य भी बुरे विचार व बुरे काम कराने वाले विचार उत्पन्न होते हैं—फिर उसके फलस्वरूप हमारे मुंह से उसी के सजातीय बुरे शब्द भी निकलते हैं। फिर बार बार वह विचार मनमें आने से अपनी जड़ जमा लेता है और दृढ हो जाता है जिससे हम बुरा काम कर बैठते हैं।

चिन्ता, भय, शोक द्वेष, ईर्षा आदि के कुविचार जब मनमें अपना अड्डा जमा लेते हैं तो और भी अनेकों प्रकार के बुरे बुरे कुविचार आने लगते हैं जिनके कारण बेचैनी और व्याकुलता बनी रहती है और जीवन बड़ा अशान्त एव कष्ट मय बन जाता है। इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए हमें निर्भयता, प्रसन्नता, प्रेम एवं आत्मीयता की भावनाऐं मनमें धारण करनी चाहिए। अच्छे विचारों को मनमें भरने से दुर्भाव और कुविचार अपने आप चले जाते हैं।

——

छुईमुई प्रकृति वाले आदमी

(प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.)

हमारे देखने में कुछ ऐसे व्यक्ति आये हैं, जो इतने संवेदन शील होते हैं कि उन पर छुईमुई के पुष्प की भांति तनिक तनिक सी बात का बहुत प्रभाव पड़ता है। कई व्यक्ति अपने अफसरों की छोटी सी टीका टिप्पणी भी नहीं सुन पाते, वे सुन कर उबल पड़ते हैं, आवेश में भर जाते हैं।

स्त्रियों में विशेषतः संवेदनशीलता वृहत् मात्रा में होती है। उन्हें दूसरे की आलोचना सुनने का माद्दा बिल्कुल नहीं होता। कोई बात हो जाय तो उसे बार बार कहती फिरेंगी, चबाव करेंगी। गढ़े मुर्दे खोदेंगी और दिल के फफोले तोड़ेंगी। वे ज़रा ज़रा सी बात पर उत्तेजित हो जायंगी। गृहयुद्ध ठन जायगा, गर्म गर्म बातें चलेंगी। बातों बातों में रोने तक की नौबत आ जायगी।

छुई मुई स्वभाव के व्यक्ति संसार की आलोचना से बड़े परेशान रहते हैं। वे उस सुकोमल सेव या अंगूर की भांति हैं जो ज़रा सी ठसक से क्षत विक्षत हो जाते हैं। मनुष्य हो या स्त्री—यदि वह ज़रा सी बात से चिढ़ उठे, या मन में घायल हो जाय अपने को न सम्हाल सके, रोने लगे, या खिन्न हो उठे, तो वास्तव में उसका रहना मुश्किल हो जाय। संसार तो पग पग पर घात प्रतिघात से परिपूर्ण है। यहां तो कांटे बिछे हैं। और उन्हीं पर होकर हमें जीवन का मार्ग तय करना होता है। ज़रा ज़रा दूर पर संघर्ष करना है, लड़ना है। प्रतिद्वन्द्वियों को पराजित कर रुकावटों को रौंदते हुए आगे का रास्ता पूरा करना है।

किसी भी क्षेत्र को ले लीजिए ! प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में आप यही स्पर्धा प्रतिघात पायेंगे। अफसर अपनी आफीसरी के घमंड में बैठा गुर्रा रहा है, पिता पुत्र को जली कटी सुना रहा है, राजा प्रजा को प्रताड़ना दे रहा है, शिक्षक विद्यार्थी को बुरी भली कह रहा है। सूदखोर अपने आसामी को धमका रहा है। संसार में इंच इंच पर प्रबल प्रतिकूलता है। राजनैतिक क्षेत्र को लीजिए। यहां अनेक विरोधी दल हैं। एक विरोधी दूसरे को गाली देता है, खुले आम तीखी आलोचना की जाती है, फटकार सुनाई जाती हैं। छिद्रान्वेषण किया जाता है। अच्छे से अच्छे आदमी पर कीचड़ उछाली जाती है। सूर्य पर थूकने की चेष्टा की जाती है। किन्तु हम देखते हैं कि गन्दे से गन्दा मनुष्य जीता है। जिसे बुरा बुरा कहते हैं, वह भी अपनी कार्य चलाता है। कुत्ते भूंकते रहते हैं तथा वह दत्तचित्त हो अपना कार्य करता चलता है। उसका मन इन आलोचनाओं से भग्न नहीं होता। उसमें दूसरों के प्रतिरोध को सहने की क्षमता होती है वह सहिष्णुता का अवतार होता है।

साहित्यिक क्षेत्र कटु आलोचनाओं का जगत है। इसमें विरोध सबसे अधिक होता है। जौन कीट्स नामक कवि बड़ा संवेदन शील था। आपकी प्रसिद्ध पुस्तक "एण्डेमियन" की कई साहित्यकों ने बहुत प्रशंसा की ! मिस्टर लीहन्ट ने उसे अति उच्चश्रेणी की पुस्तक ठहराया, किन्तु काटरली रिव्यू नामक प्रतिष्ठित पत्र में इसी सुन्दर कृति की अत्यन्त अन्यायपूर्ण एवं कटु आलोचना निकली जिसका प्रभाव इस कवि के संवेदनशील हृदय पर अत्यन्त बुरा पड़ा ; वे अत्यन्त खिन्न एवं संतप्त हो गये और कच्ची उम्र में ही उनका देहान्त हो गया। स्पष्ट है कि यदि कवि में प्रतिकूलता एवं प्रतिघात को सहने का माद्दा होता तो वे दीर्घ जीवन प्राप्त कर पाते जिससे अंग्रेजी साहित्य की श्रीवृद्धि होती। डी० एच० लौरेन्स को कितने लोगों ने अश्लील कहा किन्तु वह उस प्रतिरोध में भी कार्य करते रहे और कई अच्छी पुस्तकें संसार को दे गये। अनेक ऐसे महापुरुष हो गए हैं जिनका प्रारंभ में बड़ा विरोध किया गया किन्तु अन्त में लोग उन्हें समझ पाये। जिसे आज गाली देते हैं, वही कल ऊंचा उठ जाता है और देखते २ प्रतिष्ठा का पात्र बन जाता है। वही आदमी जीतता है जो दूसरों की सुनकर जब्त करना जानता है।

वैराग्य की विवेचना।

वैराग्य का अर्थ है—रागों को त्याग देना। राग मनोविकारों को, दुर्भावों और कुसंस्कारों को कहते हैं। अनावश्यक मोह, ममता, ईर्षा, द्वेष, क्रोध, शोक, चिन्ता, तृष्णा, भय, कुढन आदि के कारण मनुष्य जीवन में बड़ी अशान्ति एवं उद्विग्नता रहती है। कितने ही लोग अपने को बड़ा दीन, दुखी, अभावग्रस्त, संतप्त, अभागा, समझते हैं और यह रोना रोते रहते हैं कि हमारे पास अमुक वस्तु नहीं, अमुक स्थिति अनुकूल नहीं, अमुकत्रास है। परन्तु असली बात दूसरी ही होती है। अन्तः करण में रहने वाले राग द्वेष भीतर से उठते हैं और मनमें घुमड़ते हैं उन्हीं की वषैली गर्मी से मनुष्य संतप्त रहता है।

तत्वदर्शी सुकरात का कथन है कि—"संसार में जितने दुख हैं उनमें तीन चौथाई काल्पनिक हैं।" मनुष्य अपनी कल्पना शक्ति के सहारे उन्हें अपने लिए गढ़कर तैयार करता है और उन्हीं से डर डर कर खुद दुखी होता रहता है। यदि वह चाहे तो अपनी कल्पना शक्ति को परिमार्जित करके अपने दृष्टि कोण को शुद्ध करके इन काल्पनिक दुखों के जंजाल से आसानी से छुटकारा पासकता है। आध्यात्म शास्त्र में इसी बात को सूत्र रूप में इस प्रकार कह दिया है कि—"वैराग्य से दुखों की निवृत्ति होती है।" हम मनचाहे भोग नहीं भोग सकते। धन की, संतान की, अधिक जीवन की, भोग की, एवं मनमानी परिस्थिति प्राप्त होने की तृष्णा किसी भी प्रकार पूरी नहीं हो सकती, एक इच्छा पूरी होने पर दूसरी नई दस इच्छाएं उठ खड़ी होती हैं। उनका कोई अन्त नहीं, कोई सीमा नहीं। इस अतृप्ति से बचने का सीधा साधा उपाय अपनी इच्छाओं एवं भावनाओं को नियंत्रित करना है। इस नियंत्रण द्वारा, वैराग्य द्वारा ही दुखों से छुटकारा मिलता है। दुखों से छुटकारे का वैराग्य ही एक मात्र उपाय है।

वैराग्य हिन्दू धर्म की शिक्षाओं में आदि से अन्त तक ओत प्रोत है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हर मनुष्य को वैरागी रहने का आदेश है। क्योंकि वैरागी मनुष्य ही अपने मानसिक संतुलन को ठीक रख सकता है, जीवन के सच्चे आनन्द का उपभोग कर सकता है, उन्नत, समृद्ध, यशस्वी, प्रतापी एवं पारलौकिक सम्पन्नता के लिए भी वैराग्य की प्राथमिक आवश्यकता है। एक शब्द में यों कह सकते हैं—"जीवन को सुसम्पन्न बनाने का एक मात्र आधार वैराग्य है।" गीता का कर्मयोग, वैराग का ही दूसरा नाम है।

हर स्थिति के व्यक्ति को सदैव अपना दृष्टि कोण वैराग्य मय रखना चाहिए, यह भारतीय दर्शन शास्त्र का सर्वमान्य सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त की चर्चा प्राचीन ग्रन्थों में हमें सविस्तार मिलती है। पर कितने दुख की बात है कि आज वैराग्य के अर्थ का अनर्थ कर दिया गया है। उसका तात्पर्य कुछ से कुछ निकाला जाने लगा है। आज हमें वैरागी कहलाने वालों की एक भारी जनसंख्या निरुद्देश्य बेकारी में समय काटती हुई, मुफ्त की रोटियां खाती हुई, इधर से उधर मारी मारी फिरती दीखती है। आज के वैराग्य का अर्थ यह समझा जाता है घर छोड़कर चल देना, कुटुम्ब के महान उत्तर दायित्व को तिनके के समान तोड़ कर फेंक देना, संसार को मिथ्या बताना, फिर भी संसार के अन्न वस्त्र, मकान, धन आदि का उपभोग करना, लोक सेवा से सर्वथा दूर रह कर अपनी निजी मुक्ति या स्वर्ग प्राप्ति की खुदगर्जी की बातें सोचते रहना, भांग चरस, गांजा, तमाखू आदि नशीले पदार्थों की भरमार रखना, पात्र कुपात्र का विचार न करके दीनता पूर्वक भीख मांगना, भाग्यवादी अकर्मण्यता का उपदेश करना, विचित्र प्रकार का वेष बना लेना, आदि।

आज के वैरागियों ने वैराग की जो दुर्दशा कर रखी है, आइए, उस पर विचार करें और यह देखें कि उनकी कार्य पद्धति ठीक है या नहीं? छोटे छोटे बाल बच्चों को अनाथ बनाकर, तरुण

पत्नी, वृद्धि माता पिता को छोड़कर कई लोग घर से भाग खड़े होते हैं. यह कर्म परित्याग किसी भी दृष्टि में उचित नहीं ठहराया जा सकता । प्राचीन समय में ऐसे उदाहरण हमें देखे नहीं मिलते। साधारण जनता अपना साधारण ग्रहस्थ जीवन बिताते हुए ही वैराग्य का दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास करती थी। पर जो विशेष रूप से वैराग्य साधन का कार्यक्रम बनाते थे वे भी कुटुम्ब को त्यागते न थे । योगेश्वर भगवान शंकर ने दो बार विवाह किया उनकी पहली स्त्री सती और दूसरी पार्वती थी । गणेश और स्वामिकार्तिक दो पुत्र उनके थे। गीता के प्रवक्ता योगिराज कृष्ण की कई स्त्रियां और कई संतानें थीं। शुकदेवजी को ब्रह्मविद्या सिखाने वाले राजा जनक की एक सौ पत्नियां थीं। याज्ञवल्क ऋषि की कात्यायनी और मैत्रेयी दो स्त्रियां थीं । गौतम ऋषि की अहिल्या पत्नी थी जमदग्नि की रेणुका स्त्री और परशुराम पुत्र थे । च्यवन ऋषि की सुकन्या पत्नी थी। अत्रि ऋषि की स्त्री अनुसूया थी जिन्होंने सीताजी को पतिव्रत धर्म का उपदेश किया । व्यासजी की पत्नी मत्सोदरी ने शुकदेव को जन्म दिया । वशिष्ठजी के शत पुत्रों को विश्वामित्रजी ने मार डाला। लोमश ऋषि के पुत्र शृंगी ऋषि ने परीक्षित को शाप दिया । दुर्वाशा ऋषि की शकुन्तला कन्या थी । पुलिस्त ऋषि का पुत्र रावण हुआ। उद्दालक ऋषि के पुत्र नचिकता थे। उद्दालक, बाजिश्रवा के पुत्र थे। द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा था। छान्दोग्य उपनिषद में उपमन्यु के पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष के पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लव के पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्ष के पुत्र जन और अश्वतराश्विका के पुत्र वुडिल इन पांचों को महाशाल अर्थात् वेद पढाने वाले महा अध्यापक लिखा है. वे पांचों ऋषिकुमार थे। अरुण के पुत्र आरुणि उद्दालक के श्वेतकेतु पुत्र था। इन सबकी माताओं के नाम अविदित हैं तो भी उनकी माताएं रही अवश्य होंगी। इस प्रकार उन ऋषियों का सपत्नीक होना निश्चित है। यह आम प्रथा थी। ग्रहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए ऋषि लोग वैराग्य मय जीवन बिताते थे। इसमें न तो कोई दोष है और न कभी कोई दोष समझा गया है । आज का वैराग्य तो विचित्र वैराग्य है, उसमें उत्तर दायित्व और कर्तव्य कर्मों का त्याग ही त्याग समझा जाने लगा है

आज के वैरागी दुनिया को मिथ्या बताते हैं और लोक सेवा से नाक भौं सकोड कर अपने निजी स्वर्ग मुक्ति की तरकीबें लडाते हैं। पर प्राचीन काल में यह विचार धारा बहुत बुरी दृष्टि से देखी जाती थी। यह तो एक विशुद्ध खुदगर्जी है। व्यापारी लोग अपने निजी लाभ के लिए धन कमाते हैं ऐसी दशा में उनके लिए भिक्षा मांगने का कोई अधिकार नहीं और न वे मांगते ही हैं। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने निजी स्वर्ग या मुक्ति की साधना में लगे हुए हैं उन्हें दूसरों से भिक्षा मांगने या दूसरों पर अपना किसी प्रकार का कोई भार डालने का अधिकार नहीं है। प्राचीन काल में ऋषि गण इस प्रत्यक्ष सत्य को भली भांति जानते थे और वे अपने जीवन को लोकोपयोगी कार्यों में लगाये रहते थे। जब अपना सारा जीवन जनता जनार्दन के चरणों में अर्पण कर दिया तो प्रसाद स्वरूप दान या भिक्षा के रूप में निर्वाह साधन लेने का भी उन्हें अधिकार था। आज तो वैरागी कहे जाने वाले लोग लोक सेवा से कोसों दूर भागते हैं और दूध मलाई उड़ाने के लिए तैयार रहते हैं।

प्राचीन काल में ऋषिलोग लोक सेवा में तल्लीन रहते थे। धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार, चरक सुश्रुत, बागभट्ट, शार्ङ्गधर आदि ऋषियों के शरीर विज्ञान स्वास्थ्य, औषधि अन्वेषण और चिकित्सा में अपने सारे जीवन लगाये। जनता को रोग मुक्त करके उसे सुखी बनाने के लिए उन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया । नागार्जुन सरीखे कितने ही वैज्ञानिक रसायन विद्या की शोध करके जनता के लिए उपयोगी ज्ञान सामने लाये। आर्य भट्ट सरीखे ऋषि खगोल विद्या के अन्वेषणों में लगे रहे और ग्रह नक्षत्रों की गतिविधि की महत्व पूर्ण जानकारी जनता के सामने रखी । नालन्दा, तक्षशिला जैसे

पचासों विश्वविद्यालय उन्हीं के द्वारा चलते थे और संसार में विद्या का प्रकाश किया जाता था। वात्स्यायन जैसे कामशास्त्र के अन्वेषक वैरागी ही थे। बाणविद्या द्रोणाचार्य सिखाते थे। नारद जी सदा भ्रमण ही करते रहते थे और एक स्थान के समाचारों से दूसरे स्थान की जनता को अवगत कराते थे। विश्वकर्मा ऋषि शिल्प विद्या के आचार्य थे। चाणक्य राजनीति के अनुपम महारथी थे। समय पड़ने पर परशुराम जी ने अत्याचारी शासकों के विरुद्ध स्वयं फरसा उठाया और उन्हें मिटा कर जनता को अभय किया। असुरों के नाश के लिए दधीचि ने अपनी अस्थियां तक निकाल कर देदीं। व्यासजी ने अनुपम काव्य पुराण लिखे, सूत जी कथा और उपदेशों द्वारा धर्म प्रचार करते थे। संगीत, साहित्य, व्याकरण, सर्वविद्या, मल्लविद्या, विमान विद्या, शस्त्र विद्या, अर्थ शास्त्र युद्धविद्या, मंत्र विद्या, रसायन विद्या, पशु विद्या आदि अनेकानेक प्रकार के वैज्ञानिक अन्वेषण ऋषियों के आश्रमों में होते थे और वहां से बड़ा महत्वपूर्ण ज्ञान संसार को मिलता था। वे एकान्त सेवी नहीं थे बरन् संसार की गतिविधि पर अपना पूरा नियंत्रण रखते थे, राजाओं के शासन उनकी इच्छानुसार चलते थे। दशरथ के गुरु वशिष्ठजी, असुरों के गुरु शुक्राचार्य, देवताओं के गुरु बृहस्पतिजी निमंत्रण जीम कर दक्षिणा लेने वाले गुरु नहीं थे। उनके नियंत्रण में ही राजसत्ता की सारी गतिविधि चलती थी।

आजके तथाकथित वैरागी "दुनियां से हमें क्या मतलब" की रट लगाते हैं। पर प्राचीन काल में इस दूषित, ओछे संकीर्ण दृष्टिकोण को कोई सच्चा वैरागी पास भी नहीं फटकने देता था। भगवान बुद्ध कहा करते थे कि —'मैं तब तक स्वर्ग या मुक्ति नहीं चाहता जब तक कि संसार का एक भी प्राणी बन्धन में है।' कहां वह बाधितत्वमयी ऋषी उचित भावनाऐं, कहां आज के वैरागियों का खुदगर्ज दृष्टि कोण? दोनों में जमीन आसमान का अंतर है। आज देश और जाति की जो दुर्दशा है उसे देख कर सच्चे संत का हृदय पानी की तरह पिघल पड़ता है। प्रति वर्ष लाखों गौओं के सिर-धड़ से अलग होजाते हैं असंख्यों स्त्री, बच्चे उदर की ज्वाला शान्त करने के लिए विधर्मी बन जाते हैं। बीमारी, गरीबी, विदेशी शासन की रक्त शोषक दासता, अविद्या, साम्प्रदायिक कलह, आदि के कारण भारत माता जर्जर होरही है। जिसके हृदय में संत पन का एक कण भी मौजूद है वह चुप नहीं बैठ सकता, अपनी शक्ति और सामर्थ के अनुसार पीड़ित जनता की सेवा के लिए कुछ न कुछ किये बिना उससे रहा ही नहीं जासकता। ५६ लाख वैरागी जिस काम को भी हाथ में ले लें उसे बात की बात में पूरा कर सकते हैं। पर करें तब न, जब संतपन या वैराग की सचाई उनके पास हो।

वेष की नकल करने से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होसकता सिंह की खाल ओढ कर गधा सिंह नहीं बन सकता। जिस वेष की नकल करके आज लोग वैरागी कहलाते हैं वह प्राचीन समय में सर्व साधारण का गृहस्थों का वेष था। प्राचीन समय के महापुरुषों के या देवताओं की तस्वीरें या मूर्तियां जो आजकल प्राप्त होती हैं उनमें हम देखते है कि वे प्रायः नंगे बदन रहते थे धोती और बहुत हुआ तो कंधे पर दुपट्टा यही भारतीय पहनाव था। सिर पर सब कोई लंबे बाल रखते थे। आबादी कम थी जंगल अधिक थे। छोटे छोटे गांवों में झोंपड़ी बना कर बनवास करना पड़ता था। लकड़ी की खड़ाऊँ आसानी से बिना खर्च और कठिनाई के बन जाती थीं वस्त्रों के अभाव में अपने आप मरे हुए मृग आदि पशुओं का चर्म आसन आदि के काम में लेलिया जाता था। दियासलाई उस वक्त थी नहीं, जंगली हिंसक पशुओं को डराने के लिए अग्नि जलती रखी जाती थी, लकड़ियों की कमी थी नहीं यह धूनी हर घर में सदा ही जलती रहती थी। यह सब रहन सहन आम जनता का था। संतों का वैरागियों का भी वही रहन सहन था। आज स्थिति बदल गई है पुरानी रहन सहन की नकल करना उतना उपयोगी नहीं रहा है पर आज तो

अमित दानी भर्ता।

(श्रीमती रत्नेश कुमारी नीराञ्जना, मैनपुरी)

अमित दान भर्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही

ये हिन्दू संस्कृति का विपत्ति काल में पुनरुद्धार करने वाले महाकवि तुलसीदास के शब्द हैं जिनसे मानस सरोवर रूपी दान पाकर हिन्दू जनता जब तक अपनी संस्कृति के महत्व का ज्ञान शेष है तब तक कृतज्ञ रहेगी। और ये शब्द उन्होंने महासती अनुसुइया द्वारा देवी सीता को उपदेश करवाये हैं अतः इनकी सत्यता में सन्देह के लिये तनिक भी स्थान नहीं है। पाठिकाओ! क्या आपने कभी विचार किया है कि और सब सम्बन्धियों को तो मितप्रद पर पति को "अमितदान" देने वाला क्यों कहा गया है? अमित के अर्थ हैं असीम जिसकी तादाद न हो और इन्द्रियों के द्वारा जो भी विषय उपभोग किये जाते हैं वे सभी क्षण भंगुर हैं अस्तु इनसे परे जो परमात्मा है उसी को असीम कहा जासकता है। अब प्रश्न ये उठता है 'भर्ता' 'अमित का दान' कैसे देसकता है? यहां पर यही गोस्वामी जी का संकेत प्रतीत होता है कि पति को प्रतीक बनाकर उसमें जगत्पति की श्रद्धा विश्वास पूर्वक उपासना करने पर 'अमित' को 'भर्ता' द्वारा पाया जासकता है।

जो ऐसा सुअवसर पाकर भी उससे लाभ न उठाये घर आई गंगा से पवित्र न होकर उसे गन्दी नाली साफ करने में लगाये अकस्मात प्राप्त हुआ अमृत गली सींचने में व्यय करदे ऐसी दयनीय दुर्भागिनी नारी को यदि महाकवि ने 'अधम' कहा तो उसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं यदि 'इस अमित दान' कर्ता से मित दान ही लेते २ अपनी सारी आयु हम खो डालें तो शरीर त्यागने पर हम अवश्य ही अनुभव करेंगी कि अनन्त जीवन का ये इतना भाग हमने व्यर्थ ही खो डाला। ऐसी दुखदाई परिस्थिति में हमको अज्ञान वश न पड़ना पड़े इसी लिये तो तुलसीदासजी की चेतावनी है—अमितदान भर्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही 'वैदेही' शब्द भी यहां बड़े विचार पूर्वक रक्खा है देह से अहम् भाव त्याग देने पर ही हम इस सदुपदेश से लाभ उठा सकेंगी। यदि हम देह को 'मैं' मानतीं रहीं तब तो हम ये सोचने ही क्यों लगीं कि मरने के बाद हमारे इस जन्म में किये हुए कार्य हमारे लिये आगे की जीवन यात्रा के लिये कुछ उपयोगी सिद्ध होंगे अथवा नहीं? अतएव यह उपदेश उन्हीं के लिये है जो आर्य संस्कृति के अनुसार इस शरीर के त्याग के पश्चात भी जीवन की स्थिति रहती है ये मानती हैं।

अतः जो समय खोचुका उसे जाने दीजिये आइये आज से ही हम अपने जीवन को पूर्ण रूप से सफल बनाने के लिये पूर्ण शक्ति से प्रयत्न शील हों। महाकवि की चेतावनी से लाभ उठायें ताकि जब पुराने वस्त्रों के समान हम इस शरीर को त्याग दें तब हमें ये पश्चाताप न करना पड़े कि हमने इस जन्म में ऐसा कुछ भी नहीं किया जो हमारी अनन्त जीवन यात्रा में कुछ भी सहायता देसके इतना सारा समय व्यर्थ ही चला गया।

यह नकल बैरागी होने के साइनबोर्ड की तरह काम में लाई जाती है। इस अवध अनुकरण में क्या विवेक शीलता है इसे वे नकलची ही समझ सकते हैं। जब कि न तो हिंसक पशुओं के आक्रमण का भय है, न लकड़ियों की बहुतायत, दियासलाई से अग्नि प्राप्ति की असुविधा भी नहीं रही ऐसी दशा में धूनी जलाने का क्या प्रयोजन है इसे वे ही समझ सकते हैं।

विवेकशीलता हमें पुकारती है। प्राची से प्रकाश की उदय होरहा है। हमें हर समस्या पर विवेक के आधार पर विचार करना पड़ेगा। वैराग्य जैसे महातत्व को हम दैनिक व्यवहार में उपयोग करके जीवन को सच्चे अर्थ में आनंदित बनाना लाभ दायक है या बैराग का ऊटपटांग आडंबर करना उचित है? इस प्रश्न का भी हमें सही उत्तर प्राप्त करना होगा। तभी हम सत्य की दिशा में अग्रसर हो सकेंगे।

यज्ञोपवीत के-

तीन लड़, नौतार और ९६ चौवे।

त्रिरस्यता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः अनन्ते अन्तः परिवीत आगा च्छुचिः शुक्रो अर्य्योरोरुचानः।

ऋग्वेद ४।७।१

इस उपवीत के तीनों तार महान हैं। उससे सत्य, तेजस्वी और पवित्र व्यवहार को ग्रहण करो। इसके मध्य में (ब्रह्म ग्रन्थि में) अनन्त परमात्मा की शुचिता तेजस्विता और श्रेष्ठता प्रकाशवान है। यह यज्ञोपवीत भली प्रकार प्राप्त हो।

जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते। ब्रह्मचर्य्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यइति।

तै० सं० ६, ३, १०, ५

तीन सूत्रों से तीन ऋणों का बोध होता है। ब्रह्मचर्य से ऋषि ऋण, यज्ञसे देव ऋण और प्रजापालन से पितृऋण चुकाया जाता है।

मनुष्य के ऊपर तीन ऋणों का भार रहता है। ऋषि ऋण, देवऋण, और पितृऋण। इन ऋणों को चुकाने का सतत् प्रयत्न करना चाहिए। ब्रह्मचर्य से ब्रह्म के अनुकूल आचरण करने से, स्वाध्याय, तप, संयम, सत्संग आदि के द्वारा आत्मोन्नति करने से ऋषिऋण चुकाया जाता है। ऋषियों ने जीवन भर तपश्चर्या करके लोक कल्याण के लिए जो आत्मोन्नति का पथ निर्धारित किया है उसको अपना कर हमें ऋषियों का उद्देश्य सफल बनाना चाहिए। ऋषि तत्व का विस्तार करना चाहिए। अपने और दूसरों के अन्दर अधिकाधिक मात्रा में ऋषित्व की अभिवृद्धि करनी चाहिए। यह ऋषि ऋण से उऋण होने का मार्ग है।

देवता वे होते हैं जो देते हैं, लेवता वे होते हैं जो लेते हैं। देवता का गौरवास्पद पद उन्हें ही प्राप्त होता है जो संसार को कुछ न कुछ देने का, परोपकार का कार्य निरन्तर करते रहते हैं। जब देव पुरुषों की कृपा से हम प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अनेकों प्रकार के लाभ प्राप्त करते हैं तो हमारा भी कर्तव्य है कि अपनी शक्तियों से संसार का अधिकाधिक उपकार करें। यज्ञ-परोपकार को कहते हैं। यज्ञ में, लोक सेवा में, अपने को जुटाये रह कर हमें देव ऋषि से उऋण होने का निश्चय करना चाहिए।

पितृ ऋण-पितरों का पूर्वजों ऋण है। जिनकी कृपा से हमें स्वर्गादपि गरीयसी पुण्य मयी भारत भूमि में जन्म मिला है, सुरदुर्लभ मानव शरीर पाया है उन पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता के भाव रखना, उनके नाम को उज्वल करना अपना कर्तव्य है। कोई ऐसे दूषित कार्य न करने चाहिए जिससे स्वर्गीय पूर्वजों को भी लज्जित होना पड़े। पूर्वजों का श्राद्ध, उनके नाम को, कीर्ति को स्थिर रखने का प्रयत्न करना चाहिए। गृहस्थ की सुव्यवस्था, बालकों की उचित शिक्षा दीक्षा, अपने परिवार को आदर्श बनाने का प्रयत्न यह सब पितृऋषि से उऋण करने वाले कार्य है।

यज्ञोपवीत धारी को इन तीनों ऋणों से उऋण होने का प्रयत्न करना चाहिए।

यज्ञोपवीत के तीन प्रधान तार होते हैं। यह तीन तार सृष्टि के समस्त पहलुओं में व्याप्त त्रिविधि धर्मों की ओर हमारा ध्यान दिलाते हैं। उन तीनों पक्षों को स्मरण रखने और तद्विषयक कर्तव्यों को ठीक प्रकार पालन करने का संकेत करते हैं। वे त्रिवर्ग इस प्रकार है।

(१) ईश्वर, जीव और प्रकृति। इन तीनों के आपसी सम्बन्धों को समझने के लिए अध्यात्म विज्ञान का अध्ययन करना चाहिए। और माया के चंगुल से छुटकारा प्राप्त करके शाश्वत सुख की उपलब्धि के लिए अग्रसर होना चाहिए।

(२) उत्पत्ति, स्थिति और विनाश। सृष्टि के हर एक पदार्थ को इन तीन अवस्थाओं में होकर अनिवार्यतः गुजरना पड़ता है। इसलिए वस्तुओं

तथा प्राणियों के जन्म मरण की घटनाओं से, एवं परिवर्तन चक्र के अनुसार बदलती हुई परिस्थितियों को देखकर विचलित न होना चाहिए।

(३) ब्रह्मा, विष्णु और महेश। परमात्मा की इन तीन शक्तियों को तीन नामों से पुकारा जाता है। एक मात्र परमात्मा ही उत्पादक है, वह पालन कर्ता तथा मृत्युरूप है। उसे प्रसन्न करने के लिए ईश्वरीय नियमों पर चलना चाहिए।

(४) सत्, रज और तम। यह तीन तत्व सर्वत्र व्यापक हैं। इनके गुण दोषों को समझते हुए अपने में से इनका हानिकारक भाग हटाने और लाभदायक भाग बढाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(५) माता पिता और आचार्य। यह तीन प्रत्यक्ष देव हैं। इनको सुखी एवं संतुष्ट रहकर सच्ची देव पूजा करनी चाहिए।

(६) भूत, भविष्यत और वर्तमान यह तीन काल है। भूत काल की बातों से अनुभव लेकर, सुन्दर भविष्य के निर्माण के लिए वर्तमान काल का कार्यक्रम निर्धारित करना चाहिए।

(७) धर्म, अर्थ और काम। संसार के यह तीन प्रयोजन हैं। इन तीनों सूत्रों को ब्रह्मग्रन्थि रूपी मोक्ष के साथ बांध देना चाहिए। अर्थात् हमारा धर्म अर्थ और काम मोक्ष में सहायक होना चाहिए।

(८) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ। सांसारिक अवस्था के इन तीन आश्रमों को सन्यास रूपी ब्रह्मग्रन्थि के साथ जोडना चाहिए। अर्थात् हर एक आश्रम का उद्देश्य सन्यास संस्कारों को को परिपक्व एवं पुष्ट करना होना चाहिए।

(९) दैहिक, दैविक, और भौतिक। तीन प्रकार के सुख दुख संसार में है। यह सब कर्मरूपी ब्रह्मग्रन्थि से बंधे हुए हैं। इससे ऐसे शुभ कर्म करने चाहिए जिससे इन तीनों प्रकार के दुखों से बचकर परमानन्द प्राप्त होसके।

(१०) योग, यज्ञ और तप। यह तीन साधन लौकिक और पारलौकिक समस्त सिद्धियां और सफलताएं देने वाले हैं। इन्हें जीवन में ओत प्रोत कर लेने से सच्चा जीवन फल प्राप्त होता है।

(११) देश, धर्म और जाति। इनकी श्रीवृद्धि करना आवश्यक कर्तव्य है।

इसी प्रकार अन्य अनेक त्रिवर्ग हैं उन पर सूक्ष्म विचार करने, कर्तव्य निर्धारित करने व तदनुसार कार्य करने का एक प्रेरक, संकेत दीपक यज्ञोपवीत है। उसकी उपस्थिति से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए।

नौ लडें क्यों होती है?

यज्ञोपवीत कुर्वीत सूत्रेण नवतान्तवम्।
देवतास्तत्र वक्ष्यामि आनुपूर्व्येण याः स्मृताः
ओंकारः प्रथमे तन्तौ द्वितीयेऽग्निस्तथैवच।
तृतीयेनागादेवत्यं चतुर्थे सोमदेवता।
पञ्चमे पितृदेवत्यं षष्ठे चैव प्रजापतिः।
सप्तमे मारुतश्चैव अष्टमे सूर्य एव च
सर्वे देवास्तु नवम इत्येतास्तन्तु देवताः।

—सामवेदीय छान्दोग्य सूत्र (परिशिष्ट)

अर्थात्—यज्ञोपवीत के नौ सूत्रों में ९ देवता वास करते हैं (१) ओंकार ब्रह्म (२) अग्नि-तेज (३) अनन्त—धैर्य (४) चन्द्र, शीतल-प्रकाश (५) पितृगण—स्नेह शीलता (६) प्रजापति—प्रजापालक (७) वायु-स्वच्छता (८) सूर्य-प्रताप (९) सब देवता-समदर्शन।

इन नौ देवताओं को—नौ गुणों को धारण करना भी नौ तार का अभिप्राय है। बृह्म परायणता, तेजस्विता, धैर्य, नम्रता दया, परोपकार, स्वच्छता एवं शक्ति सम्पन्नता यह नौ गुण उपरोक्त नौ देवताओं के हैं। नव सूत्री उपवीत धारण करने वाले इन नौ गुणों को अपनाने के लिए निरन्तर प्रयत्न शील रहना चाहिए।

यस्यादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्त मुर्वीभुजान्।
अस्माकं भवतो यतो नवगुणं यज्ञोपवीत बलम्।

भगवान रामने परशुरामजी से कहा—हमारे पास तो शरासन का केवल एक ही गुण है परन्तु

आपके पास तो नव गुण यज्ञोपवीत का बल है। फिर हीन बल होने के कारण हम आपसे भला संग्राम किस प्रकार कर सकते हैं।

नौ गुणों का बोध कराने वाले भी नौ सूत्र हैं। "धृति, क्षमा दमोऽस्तेय, शौचमिन्द्रिय निग्रह, धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥" इस श्लोक में (१) धृति (२) क्षमा (३) दम (४) अस्तेय (५) शौच (६) इन्द्रिय निग्रह (७) धी (८) विद्या (९) सत्य (१०) अक्रोध यह दस लक्षण धर्म के बताये हैं। इनमें दम और इन्द्रिय निग्रह लगभग एक ही बात है। बहुत थोड़ा अन्तर है। इसलिए कई शास्त्रकार इन्हें नौ लक्षण ही बताते हैं। यहां मनुष्य के परम पुनीत नौ गुण कहे जाते हैं। इन नौ गुणों का प्रतिनिधित्व करने वाले यज्ञोपवीत के नौतार हैं। जनेऊ पहनने वाले का कर्तव्य है कि नौतारों के सूत्रों के वास्तविक भेद उन नौ गुणों को भी अपने में धारण करे।

ब्रह्मणोत्पादितं सूत्रं विष्णुना त्रिगुणी कृतम्।
कृतो ग्रन्थिस्त्रनेत्रेण गायत्र्या चाभिमंत्रितम्।

— सामवेदीय छान्दोग्य सूत्र परिशिष्ट

अर्थात्—ब्रह्माजी ने वेदत्रयी से तीन तन्तु का एक सूत्र बनाया विष्णु ने कर्म उपासना और ज्ञान तीनों काण्डों से तिगुना किया और शिवजी के गायत्री से अभिमंत्रित करके ब्रह्म गांठ दी। इस प्रकार यज्ञोपवीत नौ तार का बन गया।

इस प्रकार ऋग् यजु साम तीन वेदों का ज्ञान कर्म उपासना का तथा जन्म, पालन एवं मृत्यु का आभास यज्ञोपवीत से मिलता है। तीनों देवताओं के त्रिविधि कर्मों से नौ सूत का यज्ञोपवीत बना है।

९६ चप्पे का कारण—

चतुर्वेदेषु गायत्री चतुर्विंशतिकाक्षरी।
तस्माच्चतुर्गुणं कृत्वा ब्रह्मतन्तुमुदीरयेत्।

(१) अर्थात्—गायत्री २४ अक्षर की है। वेद ४ हैं। चौबीस का चौगुना ९६ होता है। यह भी ९६ चप्पों का हेतु है। वेद और गायत्री के अभिमत को स्वीकार करना ९६ चौवे लगाने का अभिप्राय है।

तिथिवारञ्च नक्षत्रं तत्ववेदगुणान्वितम्।
कालत्रयं च मासाश्च ब्रह्मसूत्रं हि षण्णवम्

सामवेदी छान्दोग्य सूत्र.

(२) तिथि १५, वार ७, नक्षत्र २७, तत्व २५ वेद ४, गुण ३, काल ३, मास १२ इन सबका जोड ९६ होता है। ब्रह्म पुरुष के शरीर में सूत्रात्मा प्राण का ९६ वस्तु रूप कन्धे से कटि पर्यन्त यज्ञोपवीत पड़ा हुआ है ऐसा भाव यज्ञोपवीत धारण करने वाले को मन में रखना चाहिए। मैं समय का, विश्व का, सृष्टि का, तथा धर्म का एक घटक हूं। ब्रह्म पुरुष को सूत्र रूप से अपने में धारण किये हुए हूँ। मैं विश्व में ओत प्रोत हूँ विश्व मुझमें समाया हुआ है विश्व की समस्याऐं मेरी समस्याऐं, विश्व के हित में मेरा हित है। इन विचारों को अपना कर मनुष्य तुच्छ स्वार्थों को तिलाञ्जलि देकर परमार्थी बने यह भी ९६ चौवों का अभिप्राय है।

(३) चारों वेदों में १ लाख श्रुतियां हैं। इनमें ८० हजार कर्मकाण्ड, १६ हजार उपासना काण्ड और शेष ४ हजार ज्ञान काण्ड की है। इनमें से कर्मकाण्ड और उपासना काण्ड ग्रहस्थों ब्रह्मचारियों के लिए तथा ज्ञान काण्ड सन्यासियों के लिए है। कर्मकाण्ड की ८० हजार और उपासना की १६ हजार मिला कर ९६ हजार होती है। एक चप्पे में एक हजार श्रुतियों का प्रतिनिधित्व लिया गया है। और ९६ चप्पे का यज्ञोपवीत बनाया गया है। इसका तात्पर्य इतनी श्रुतियों का धारण करना है। सन्यासी यदि यज्ञोपवीत पहनते तो उनका १०० चोपे का होता पर शास्त्र में सन्यासी को उपवीत त्यागने का आदेश है इसलिए वे नहीं धारण करते।

(४) सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार मनुष्य अपनी उंगलियों से ८४ से लगा कर १०८ अंगुल तक का होता है ८४ और १०८ के बीच का मध्यान्तर ९६ है साधारणतः औसतन, ९६ अंगुल का मनुष्य शरीर मान कर जनेऊ में ९६ चप्पे रखे गये हैं शरीर को, जीवन को ब्रह्ममय बनाने का बोझ कन्धे पर धारण करना, यह भी ९६ चप्पे के यज्ञोपवीत का अभिप्राय है। ——

पुष्पाञ्जलि ।

(जगद्गुरु आचार्यपीठाधिपति श्री राघवाचार्यजी)

भक्ति शास्त्र का आदेश है कि केवल प्राकृतिक पुष्पों को भगवान् के चरणों में समर्पित कर देने से भगवान् प्रसन्न नहीं हो जाते । बाह्य आराधना के अतिरिक्त भक्त को भगवान् की अन्तरङ्ग आराधना भी करनी पड़ेगी । इस आराधना की पूर्ति तभी होती है जब निम्न लिखित आठ पुष्पों की पुष्पांजलि भगवान् को समर्पित की जाती है—

अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदयापुष्पं क्षमा पुष्पं विशेषतः ॥
ज्ञान पुष्पं तपः पुष्पं ध्यानं पुष्पं तथैव च ।
सत्यमष्टविधं पुष्प विष्णोः प्रीतिकरं भवेत ॥

अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, सब प्राणियों पर दया, क्षमा, ज्ञान, तप, ध्यान और सत्य - ये आठ पुष्प भगवान् श्री विष्णु को प्रसन्न करने वाले हैं । अतएव भक्त का कर्तव्य है कि आठ पुष्पों के द्वारा भगवान् की नित्य आराधना करे ।

पहिला पुष्प अहिंसा है । भक्त को अहिंसक बनना होगा । उसे किसी की हिंसा न करनी चाहिये और सदा यह ध्यान रखना चाहिये कि उसके शरीर से ही नहीं प्रत्युत वाणी और मन से भी किसी को कष्ट न पहुँचे ।

दूसरा पुष्प है इन्द्रिय निग्रह । इन्द्रियां ही आत्मा को संसार के बन्धन में फँसाकर श्रेय के मार्ग से डिगा देती हैं । भक्त यदि इन इन्द्रियों को अपने नियंत्रण में नहीं रखता तो भगवान् से प्रेम करने के स्थान पर नश्वर और असत् पदार्थों से प्रेम करने लगेगा । इसलिये भक्त को अपनी इन्द्रियों का दमन करना चाहिये ।

तीसरा पुष्प है सर्वभूत दया । भक्त का कोई शत्रु नहीं होता । वह सारे जगत को 'सीय राम मय' देखा करता है । उसे सर्वत्र अपने प्रभु की झांकी दिखाई देती है । भक्त का हृदय शान्त होता है । जब वह किसी को अशान्त देखता है तो तुरन्त शान्ति का उपाय बता देता है । यह उसकी दया है । किसी भी दीन अथवा दुःखी को देखकर उसको दया आ जाती है और वह उस व्यक्ति के लिये भगवान् से प्रार्थना करता है ।

चौथा पुष्प है क्षमा । यदि कोई व्यक्ति भक्त को दुःख दे तो भी वह उस अपराधी के अहित की कामना नहीं करता । वह उसके अपराध क्षमा कर देता है और भगवान् से भी इसकी प्रार्थना करता है ।

पांचवां पुष्प है ज्ञान जिसके द्वारा भक्त भगवान् को जान पाता है । संसार के लोग समझते हैं कि वह भगवान् के अतिरिक्त और किसी को नहीं मानता । किन्तु वास्तवमें वह भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी को जानता ही नहीं ।

छठा पुष्प है तपस्या । भक्त अपने जीवन को तपाता है । उसकी तपस्या भगवान् के प्रसन्न करने के लिये होती है । वह तपस्या को अपना कर्तव्य समझकर तपस्या के द्वारा भगवान् की आराधना करता है ।

सातवां पुष्प है ध्यान । भक्त भगवान् का निरन्तर ध्यान करता है और किसी का चिन्तन उसे रुचिकर नहीं होता । अन्य किसी का ध्यान करने को उसके पास समय ही नहीं होता ।

आठवां पुष्प है सत्य । भक्त के जीवन में सर्वत्र सत्य का ही प्रकाश दिखाई देता है । असत्यता का भाव उसमें तनिक भी नहीं रहता ।

अहिंसा आदि इन आठ गुणों को अपना लेना ही इन पुष्पों को भगवान् के समर्पित करना है । प्रत्येक भगवद्-भक्त का कर्तव्य है कि वह इन आठ गुणों को अपनावे और अपनाकर इस पुष्पांजलि को भगवान् के समर्पित करे ।

मनुष्य को सहिष्णुता सीखनी चाहिए । वही आदमी जीतता है, जो दूसरों की सुनकर जब्त करना जानता है ।

× × ×

'प्रेस फण्ड' के लिए स्वजनों की श्रद्धाञ्जलियां

अखंड-ज्योति के नवजीवन निर्माणके लिए सात्विक सहायताऐं।

१०१) श्री हरीरामजी लखीमपुर खीरी
५१) राजकुमार श्रीहरभगतसिंहजी भरुदरा स्टेट
१५) श्री जगदीशप्रसाद गुप्ता पुरुलिया
१५) श्रीमुरलीधर शुभकरन धानुका, औरंगाबाद कैन्ट
११॥≡) श्रीचंपालाल शिवदयाल अग्रवाल,सड़कअर्जुनी
११) श्री० बद्रीनारायनजी यादव बेतिया
११) एस० सोमानी एण्ड कं० लि० कलकत्ता
११) श्री० तिरखाराम बंशीधर कलकत्ता
११) ,, रामनिवास जीवियानी, कलकत्ता
११) ,, जी० अनराज जैन, मुरेडी पार्ल्या
१०) ,, रामसेवकजी मिश्र, खड्गपुर
१०) ,, हनुमानसिंहजी जुसरिया
१०) ,, चन्द्रिकाप्रसादजी, माटुंगा, बम्बई
१०) ,, शान्तीलाल छायाभाई, अहमदाबाद
६) ,, मूलचन्द दामोदर स्वरूप, लखीमपुर खेरी
५) श्री० मन्नालाल वर्मा रबाईपुर
५) ,, ज्ञानसिंह हवेलसिंहजी भिण्ड
५) ,, प्रभूराम कालूरामजी घोटिया, ऊन
५) ,, दामोदर पंत गणपतराव रिंतोड़े, सेलू
५) ,, जेमाराम आर्य लैया
५) ,, दर्शनरामजी ईशरीबाजार
५) ,, माधवलाल कैवर्त, विलासपुर
५) ,, ठाकुरप्रसादसिंहजी, नौतनवा बाजार
५) ,, मुनीरामकृष्णपाटिल, डासाना
५) ,, प० राधेश्याम शर्मा, ज्योतिषरत्न, खेरिया
५) ,, केशवसिंह त्र्यम्बकसिंहजी करंजागड्डाण
५) ,, रामछविलालजी क्लर्क, मुरादाबाद
५) ,, रघुनाथप्रसादजी हजारी बाग
५) ,, सागरमलजी मूंदड़ा, सिहरावट
५) ला० छन्नूलाल गुप्त, कन्नौज
२॥) श्री० मुनीश्वरकुमार जैन, बिजनोर
२।) श्री० द्वारिकाप्रसाद शर्मा, छुरी कटघोड़ा
२) श्री० गिरजाभूषण मुखोपाध्याय, जबलपुर
२) पं० सुखदेवप्रसाद जोशी, सिहरावट
२) श्री० घीसालाल गिरधारीलाल, नीमच
२) ,, इन्द्रचन्द्र बोथरा, सिलहट
२) श्री० मुलतानचंद गुप्ता, लेटीरी
२) श्रीमती शारदादेवी बक्सी जबलपुर
२) श्रीमती सुशीलादेवी नरुला, कराची
२) श्री० के० वी० सुभाराव, मानिकपुर
२) ,, जी० एम० कोठारी, इन्दोर
२) चौ० खेमचन्दजी, विठमढा
२) श्री० लालचन्दजी गुप्ता, मल्हेंडी
२) ,, जैसिंह वर्मा, मल्हेंडी
२) ,, शंकरराव, नारायण खोडे, खरगोन
२) ,, हिम्मतसिंह भगवानसिंहजी खरगोन
२) ,, गजानन शोभाराम दुवे, खरगोन
२) विद्यार्थी रामचन्द्र कोदरजी खरगोन
२) श्री० गंगाचरनजी कूर्मक्षत्रिय बडिगवां
२) प० शशिधर झा बानू छपरा
१।) श्री० रामसुन्दरसिंह आजाद तेतरिया
१।) श्री० नथमल चुन्नीलाल जैन, बागरा
१) भाई निसारअली ऐशाकअलीजी खरगोन
१) श्री० शोभाराम झापडूजी महाजन, खरगोन
१) चौ० हाकिमसिंह यादव जसवन्तनगर
१) श्री० विद्यासागर श्रीवास्तव, मलाजनी
१) पं० सुरेशजी शुक्ल लखीमपुर,खीरी
१) श्री० बख्तावरलालजी बत्तो, सठिगवां
१) श्री० शिवपालसिंहजी शर्मा बडिगवां
१) श्री० रामगोपालजी कूर्मक्षत्रिय, बडिगँवा
१) श्रीमती भारतीदेवी हिन्दीरत्न, बेतिया
१) श्री० भवतोष भादुडी, बेतिया
१) श्री० रामदयालप्रसाद बेतिया
१) चौधरी चन्दनप्रसाद, बेतिया
१) पं० रघुनाथप्रसाद मिश्र, बेतिया
१) डा० गोपालप्रसाद बंशी, बेतिया
१) श्री० उमाशंकर तिवारी, खमैला,
१) श्री० आशारामजी रिटायर्ज, पीपरी
१) श्री० वासुदेवजी पाण्डेय कन्नौज
१) श्री० एम० सिंह, हैडमास्टर, नागरीसपुर

———

उद्बोधन

(श्री० महावीरप्रसाद विद्यार्थी, साहित्यरत्न).

आंखें खोल उर की, हटा के यह मोह-पट,
प्रेम-मूर्ति होके, प्रेम-गीत जब गाएगा।
लहरा रही है वसुधा पै सुधा-धारा मञ्जु,
पीके उसे तब तू अमर-पद पाएगा॥
राग गूंजता है कण-कण में रसीला यहां,
ब्रह्मानन्द-धारा बीच सुनके समाएगा।
जागेगी अखण्ड-ज्योति तेरे मनोमंदिर में,
विश्व अभिराम धाम तेरा बन जाएगा॥

आँगन में प्राची के मनोरमा उषा समोद,
स्नेह—सरिता में जगती को नहलाती है।
वायु की हिलोर मन्द मधु को लुटाती हुई,
जीवन में एक नव राग भर जाती है॥
लाल—लाल गूँध के गुलाब अलकों में मञ्जु,
सन्ध्या—सुन्दरी सहास शांति सरसाती है।
बैठा क्यों व्यथित, देख उस करुणेश की ये,
करुणा सकल विश्व-बीच लहराती है॥

तेरे प्रिय बन्धु क्यों विलग तुझसे हैं पड़े,
टूटी हुई प्रेम की लड़ी को अब जोड़ तू।
वासना-बिभावरी है बांधे अलकों में तुझे,
ज्ञान की जगा के ज्योति, यह पाश तोड़ तू॥
स्वार्थ—साधना में दिन-रात रहता है रत,
जीवन को गरल बनाना अब छोड़ तू।
शांतिमय नन्दन निकुंजों में विहार कर,
नारकीय पथ से मनुज ! मुंह मोड़ तू॥

प्रेम की सुधा से सींच सूखे हृदयस्थल को,
धूनी क्यों रमाता है, लगाता भस्म अंगों में।
ज्योति जागती है परमेश की अनवरत,
आंखें खोल, देख तेरी जीवन-तरंगों में॥
कान खोल, वायु गुन-गुन गा रहा है कुछ,
तू तो है महान्ध ! मस्त अपने मृदंगों में।
अन्तस में तेरे रस-धारा बहती अमन्द,
भटक रहा क्यों तू बनों में, गिरि—शृङ्गों में ?